CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म

फरवरी १९८०

५० पैसे

वेदमनीषी श्री पं. सातवलेकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

वर्ष ४८ : अंक २ : पौष २०२३

स्वामी— स्वाध्याय-मंडल, पारडी [जि. बलसाड]

प्रधानसंपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

संपादक
श्री श्रुतिशील शर्मा, एम्. ए., शास्त्री, तर्कशिरोमणि

वि ष या नु क्र म णि का

१ तपस्यासे ईशप्राप्ति [वैदिक प्रार्थना] ३३

२ वेदमूर्ति पं. सातवलेकर समारंभ ३५

३ अमृतपान - उपःपान मूल लेखक— श्री वैद्य ग. पां. परांजपे
अनु० — श्री श्रुतिशील शर्मा ४१

४ हमारा आर्यनाम ही गौरवपूर्ण तथा सर्वश्रेष्ठ है श्री आचार्य भद्रसेन ४९

५ क्या वैदिक भारतीय अतिथियोंका गोमांससे आतिथ्य सत्कार करते थे ?
श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा ५३

६ ऋग्वेदका सुबोध भाष्य पं. श्री. दा. सातवलेकर २४९ से २८०

'वैदिक धर्म' वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५० डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो.- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ॐ

पौष : विक्रमी संवत् २०२३

वैदिक धर्म

तपस्यासे ईशप्राप्ति

ॐ प॒वित्रं॑ ते॒ वि॒त॑तं ब्रह्मणस्पते
प्र॒भुर्गात्रा॑णि॒ पर्ये॑षि वि॒श्वत॑ः ।
अत॑प्ततनूर्न तदा॒मो अ॑श्नुते
शृ॒तास॒ इद्वह॑न्त॒स्तत् समा॑शत ॥

(ऋ० ९।८३।१)

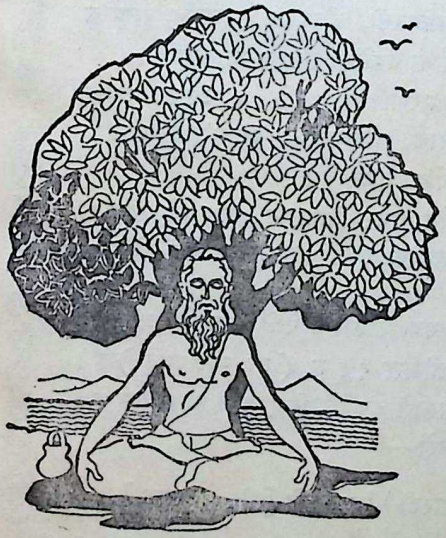

हे (ब्रह्मणः पते) ज्ञानके स्वामिन् ! (ते विततं पवित्रं) तेरा चारों ओर फैला हुआ यश पवित्र है, तू (गात्राणि विश्वतः पर्येषि) अपने सामर्थ्यसे चारों ओर व्याप्त है, पर (अतप्ततनूः आमः तत् न अश्नुते) तपस्यासे बिना तपे कच्चे शरीरवाला मनुष्य उस व्यापक ईश्वरको नहीं पा सकता। (शृतासः वहन्तः इत्) तपस्याको करनेवाले जनही (तत् सं आशत) उसे प्राप्त करते हैं।

भगवान्‌की महिमा चारों ओर फैली हुई है। वह सर्वत्र व्याप्त है। सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी केवल वही प्राप्त कर सकता है, जो तपस्यासे अपने शरीरको तपा लेता है। परिश्रमके बिना ईशप्राप्ति असंभव है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानवजीवनके रहस्योंसे भरपूर

एक संग्रहणीय खजाना

जी हां, मानवशरीरकी रचना विधाताके कौशल्यकी चरम सीमा है। शरीर स्वयंमें एक रहस्यमय विश्व है, जिसके कई रहस्योंका स्फोट आजतक भी नहीं हो पाया है।

मानवशरीरविज्ञानके विज्ञोंने इस शरीरका जितना विश्लेषण आज किया है, उससे कहीं अधिक और यथार्थ विश्लेषण हमारे प्राचीन ऋषिमहर्षियोंने इस शरीरका किया था। उन्होंने आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन भागोंमें मानव शरीरके सारे रहस्योंका उद्घाटन किया है। इन सारे रहस्योंको यदि आप जानना चाहते हैं, तो अवश्य पढिए श्री पं. श्री दा. सातवलेकर लिखित अथर्ववेदके सुबोध भाष्यके पांचों भाग। वे पांच इसप्रकार हैं—

(१) ब्रह्मविद्या प्रकरण। (२) मातृभूमि और स्वराज्यशासन। (३) गृहस्थाश्रम। (४) आरोग्य और दीर्घायुष्य। (५) मेधाजनन, संगठन और विजय।

इनमें प्रथम चार भाग बिक्रीके लिए तैय्यार हैं, अन्तिम एक भाग अभी प्रेसमें है। उनके भी शीघ्र छपनेकी आशा है।

प्रथमभागमें— 'ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मप्राप्तिका मार्ग, पाशवी सामर्थ्यका आत्मिकशक्तिसे प्रतिकार, गुह्य अध्यात्मविद्या, पूजनीय ईश्वर, आत्मशक्ति, ब्रह्माण्ड देह, आत्मज्योति, मुक्तिका मार्ग, मुक्तिका अधिकारी,' आदि कई आध्यात्मिकज्ञानके रहस्योंका संग्रह है।

दूसरे भागमें— 'वैदिकराष्ट्रगीत, राजाका कर्तव्य, राष्ट्रका अभ्युदय, राजाका चुनाव, कर, दुष्टका नाश, शत्रुपर विजय, युद्धनीति, विजयप्राप्ति, स्वशक्तिका विस्तार, युद्धसाधन' आदि कई राज्यशास्त्रविषयक बातोंका वर्णन है।

तीसरे भागमें— 'पवित्र गृहस्थाश्रम, कुलवधू एवं पतिके गुण, वर और कन्याके गुण एवं उनका चुनाव, वैदिकविवाहका स्वरूप, धनार्जन, गोरक्षण, आदर्शपतिपत्नी, वीरपुत्रकी उत्पत्ति, रमणीय घर, भाग्यप्राप्ति' आदि गृहस्थाश्रमके सम्बन्धमें कई अत्यन्त उपयोगी बातोंकी विशद व्याख्या है।

चौथे भागमें— 'प्राणविद्या, दीर्घायुप्राप्तिका उपाय, अमरशक्तिकी प्राप्ति व उसका उपाय कल्याणकी प्राप्ति, आत्मरक्षण, वर्चःप्राप्ति, रोगनिवारण, यक्ष्मानाश, विषयनाश, आनुवंशिक रोगोंकी चिकित्सा, हिप्नोटिज्म, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा' आदि कई विषयोंका वर्णन है।

पांचवें भागमें— 'मेधाजनन, मेधाकी प्राप्ति, मित्रतावर्धन, वनस्पतिविज्ञान, ब्रह्मचर्य, संगठन, मातृभूमिकी रक्षा, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रपोषण, धनप्राप्ति एवं आन्तरिक तथा ब्रह्मशक्तियों पर विजय' आदि कई उल्लेखनीय बातोंका वर्णन है।

सभी भाग मूलमंत्र, अर्थ, भावार्थ, तथा स्पष्टीकरणसे युक्त डबलक्राऊन ८ पेजी साइजके क्रीमवोव पेपरसे समृद्ध एवं आकर्षक गेटअपसे सम्पन्न हैं। प्रत्येक भागकी कीमत १२ रु. (डा. व्य. पृथक्) है। भागोंकी छपाई सीमित संख्यामें ही हुई है। अतः न पानेकी निराशासे बचनेके लिए आज ही अग्रिम धन भेजकर पार्सलसे या वी. पी. से मंगायें। मुफ्त सूचीपत्रके लिए लिखें—

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, पोस्ट- 'स्वाध्याय मंडल (पारडी)' पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिसे हम माता कहते हैं, उसी गौमाताका
वध करना हमारे लिए लज्जाजनक है—

'वेदमूर्ति पं. सातवलेकर'

श्री [illegible] उपाध्याय [illegible],
'हरि निवास' १/१०५, [illegible]
[illegible] (नेपाल)

बायेंसे दायें— श्री एन्. एच्. भगवती, श्री पं. सातवलेकर, माननीय श्री नित्यानंद कानूनगो व श्री मा. स. गोळवलकर गुरुजी

[२४ दिसम्बर १९६६ के दिन वेदपुरुष श्री पं. सातवलेकरजीका गुजरातप्रान्तकी तरफसे गुजरातकी राजधानी अहमदाबादमें एक सत्कार समारंभ हुआ। इस समारंभके अध्यक्षका स्थान गुजरातके राज्यपाल श्री नित्यानन्द कानूनगोने विभूषित किया था। इस समारंभ समितिके अध्यक्ष सुप्रीम कोर्टके निवृत्त न्यायाधीश एवं हिन्दूविश्वविद्यालयके भू. पू. उप-कुलपति श्री एन्. एच्. भगवती थे। उस समारंभका विस्तृत विवरण यहां प्रस्तुत है]

२३ दिसम्बर १९६६ का दिन। चहलपहलसे भरा हुआ अहमदाबादका रेल्वे स्टेशन। बम्बईसे आनेवाली गुजरात एक्सप्रेस अपने निश्चित समयपर पहुंची। उसके प्रथमश्रेणीके डिब्बेसे सिरपर सफेद टोपी, धोती और कोट पहने हुए एक भव्य और ओजस्वी मूर्तिका आविर्भाव हुआ। चेहरा तेजपूर्ण, गम्भीर, विद्वत्ताकी झलक यह सब गुण एक ऐसे व्यक्तिकी महिमा प्रकट कर रहे थे, जिसने १०० वर्षका क्रियाशील जीवन बिताया और वेदभगवान्‌की सेवाके लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। यह भव्यमूर्ति थी मातापुत्र वेदपुरुष श्री पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरकी। प्रवासकी थकान चेहरेपर प्रतिबिम्बित हो रही थी, पर वह मनके उत्साहसे पूरी तरह दब गयी थी। स्वागतसमितिकी तरफसे सेठ श्री चतुर्भुजदास चिमनलालने फूलहारसे श्री पंडितजीका स्वागत किया। अहमदाबादमें श्री पंडितजीके निवासकी व्यवस्था न्यू स्वदेशी मिल्सके मैनेजर श्री श्रीकृष्णजी अग्रवालके यहां थी। श्री अग्रवालजी सरल-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हृदयी व्यक्ति हैं। वे स्वयं श्री पंडितजीकी सेवामें हाजिर रहते थे।

२३ ता. की शामको "गुजरात समाचार" नामक अहमदाबादके प्रसिद्ध अखबारके संवाददाताको मुलाकात देते हुए पंडितजीने कहा कि– 'यदि भारतवर्षका उद्धार किसी धर्मसे हो सकता है, तो वह वैदिकधर्म ही है। क्योंकि यह सार्वभौम और सार्वकालिक है। जब मैंने सर्व प्रथम वेदोंका अध्ययन किया तो ऐसा महसूस हुआ कि यदि वेदोंके बताये मार्गपर यह राष्ट्र चले, तो निश्चयसे इसकी उन्नति हो सकती है। वेदोंमें मानवजातिके कल्याणका सर्वोत्तम और सर्वांगी मार्ग बताया है। समस्त विश्वके कल्याणके लिए वेद मार्गप्रदर्शन कर सकते हैं।'

उन्होंने आगे कहा कि– 'वस्तुतः 'मैं मुसलमान हूँ, मैं हिन्दू हूँ' आदि झगडे तो अंग्रेजोंकी कूटनीतिके परिणाम हैं। उनका ध्येय तो हम पर राज्य करना था, अतः वे हिन्दु मुसलमानोंको आपसमें लडवाकर राज्यशासन करते थे। वास्तवमें देखा जाए तो हिन्दुमुसलमान मूलतः एक ही हैं। दोनों धर्म मूलमें एक ही रास्तेपर जाकर मिलते हैं। कुरान-शरीफकी पहिली आयत 'ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्' इस वेद मंत्रका शब्दशः अनुवाद है।'

आजकी ज्वलन्त समस्या गौवधबन्दीके बारेमें संवाद-दाताके पूछनेपर श्री पंडितजीने कहा— 'गौवध बन्दी आन्दोलन एक उत्तम कार्य है। इसको सब भारतीयोंका समर्थन मिलना ही चाहिए। वेदोंमें गौका नाम 'अघ्न्या' है, जिसका अर्थ है 'न मारने योग्य'। यह गाय वेदोंमें देवोंकी माता कही गई है। इसके अलावा वेदोंमें ऐसे अनेकों मंत्र हैं, जिनमें स्पष्ट रूपसे कहा है कि 'गायको मारना नहीं चाहिए।' गौवध प्रतिबन्धके लिए उपवास करनेवाले जगद्गुरुके प्रति सरकार जो रुख अपना रही है वह प्रशंस-नीय नहीं है। श्री शंकराचार्यकी मांग धर्मानुसार है और वह पूरी होनी ही चाहिए।'

दीर्घजीवनके बारेमें पूछे जानेपर श्री पंडितजी बोले– 'मेरे दीर्घजीवनका रहस्य सूर्य नमस्कार, आसन और प्राणायाम है। इस उमरमें सूर्यनमस्कार तो नहीं हो पाता, पर १५०-२०० प्राणायाम अब भी प्रतिदिन करता हूँ। जो भी दीर्घ-जीवी बनना चाहे, उसे चाहिए कि वह प्रतिदिन व्यायाम और प्राणायाम करे। गायका दूध पिए और चाय, कॉफी आदिका सेवन न करे।'

संवाददाता सम्मेलनका समापन करते हुए पंडितजीने अन्तमें कहा कि– 'वैदिकधर्मका प्रचार ही मेरे जीवनका ध्येय है, क्योंकि मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि इसीसे मानवताका कल्याण होगा और भारतका उत्कर्ष होगा।'

× × ×

२४ ता. को गुजरात विश्वविद्यालयके उपकुलपति श्री उमाशंकर जोशीके निमंत्रण पर विश्वविद्यालयके प्रांगणमें विद्यार्थियोंको सम्बोधित करनेके लिए विश्वविद्यालयमें पधारे। उपकुलपतिने श्री पंडितजीका स्वागत करते हुए कहा कि—

'भारतमें यों तो ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जो सौ वर्षके हैं, पर जो क्रियाशीलता श्री पंडितजीके जीवनमें देखनेमें आती है, वह किसी किसीमें ही होती है। यही क्रियाशीलता श्री पंडित जीके जीवनकी विशेषता है। श्री पंडितजीने वेदोंपर जो कार्य किया है, वह अद्वितीय है। मैं जब विद्यार्थी अवस्थामें था, तभीसे श्री पंडितजीका नाम सुनता चला आ रहा हूँ। यह हमारा सौभाग्य है कि आज ये हमारे मध्यमें पधारे।'

इसके बाद 'अपनी जीवनश्रद्धा' इस विषयपर बोलते हुए श्री पंडितजीने कहा कि—

'हैदराबादमें रहते हुए मैंने वेदोंके कुछ मंत्रोंका अनुवाद करके उसे पुस्तक रूपमें छपाया था, जिसे देखकर ब्रिटिश सत्ता घबडा गई और उसने उस पुस्तककी सारी प्रतियां जप्त करके जला दीं। इस घटनाने मुझे वेदोंके अध्ययनकी तरफ प्रेरित किया। इसके बाद मैं ज्यों ज्यों वेदोंमें प्रवेश करता गया, त्यों त्यों वेदोंकी महत्ताका मैं प्रशंसक होता चला गया और अन्तमें मैंने यह पक्का निश्चय कर लिया कि मैं अपना जीवन वेदोंके प्रचारमें ही व्यतीत कर दूंगा। इस निश्चयने मुझे एक निश्चित दिशाकी तरफ प्रेरित किया।'

'लोग मुझे देखकर आश्चर्य करते हैं कि यह सौवें वर्षमें भी इतना क्रियाशील कैसे है? पर मैं आपको बताऊं कि मनुष्यकी पूर्ण वैदिक आयु १२० वर्षकी है। इतना तो हर-एकको जीना ही चाहिए। हमारे ऋषियोंने १२० वर्षतकका कार्यक्रम मनुष्योंके सामने रखा है। जो ऋषियोंके बताये मार्ग पर चलेगा, वह अवश्य इतने वर्ष जीएगा। दीर्घजीवनके अनेक उपायोंमें प्राणायाम, व्यायाम और संयमित जीवन ये आवश्यक हैं। प्राणशक्तिकी वृद्धिसे आयु बढती है। अतः आजके तरुणोंको चाहिए कि वे प्राचीन ग्रंथोंका अध्ययन करें और उनके बताये मार्गों पर चलें।'

+ + +

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुजरातप्रान्तकी ओरसे अहमदाबादमें संगठित शताब्दी समारोहका प्रत्युत्तर देते हुए श्री. पं. सातवलेकर

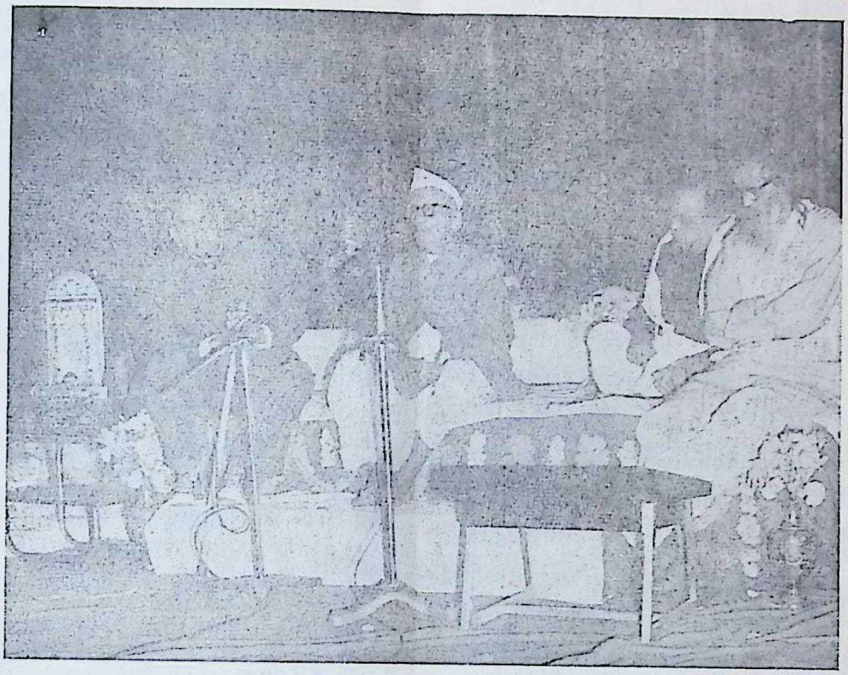

बायेंसे दायें— श्री एन्. एच्. भगवती (अध्यक्ष सातवलेकर सत्कार समिति), श्री पंडितजी, श्री नित्यानन्द कानूनगो (राज्यपाल, गुजरात) श्री गुरुजी मा. स. गोलवलकर, (एकदम बायें) श्री पंडितजीको भेंटमें दिया गया सुवर्णचषक

२४ दिसम्बरकी शामको दिनेश मॅमोरियल हॉलमें श्री पंडितजीके सत्कार समारंभका आयोजन किया गया। हॉल श्रोताओंसे खचाखच भरा हुआ था। "वैदिक प्रार्थना" के बाद प्रा. वी. सी. गज्जरने विभिन्न नेताओंके शुभकामना व्यक्त करनेवाले सन्देश पढकर सुनाये।

तदनन्तर समारोहका प्रारंभ करते हुए गुजरात विश्वविद्यालयके उपकुलपति श्री उमाशंकर जोशीने कहा कि—

'श्री पंडिजीका जीवन एक आदर्श जीवन रहा है। उन्होंने जो कुछ कहा उसे प्रथम अपने जीवनमें उतारा। उनका जीवन ही लोगोंको मार्ग बता रहा है। उन्होंने अपना सारा जीवन वेदभगवान्‌की सेवामें लगा दिया। वेद सारे विश्वके धर्मग्रन्थ हैं। उनमें विश्वके कल्याणकी बातें हैं। अतः आजकी परिस्थितिमें वेदोंकी अत्यन्त आवश्यकता है।'

इसके बाद सरसंघ चालक श्री मा. स. गोलवलकर गुरुजीने अपना सम्मान प्रदर्शित करते हुए कहा—

'वेदोंके तत्त्वज्ञानसे कर्मनिष्ठा पैदा होती है, निर्भयवृत्ति उत्पन्न होती है। वेदोंने बलकी उपासना करनेका आदेश दिया है। इन वेदादेशोंके अनुसार जबतक भारतीय जीवन रहा, तबतक यह राष्ट्र उन्नत रहा। आज ये भाव नहीं रहे। हमारी भी कोई भाषा और संस्कृति है, यह हम भूल गए। आत्मविस्मृति और स्वाभिमान शून्यताके इस महाप्रलयमें श्री पंडितजीका वैदिक ज्ञान प्रचारका कार्य जलप्रलयमें मनुकी मछलीके समान अत्यावश्यक है।'

'आज जहां भी दृष्टि जाती है, वहीं भीरुताके दर्शन होते हैं। नेतागण अपनी कायरताका बचाव करनेके लिए तत्त्वज्ञानका आविष्कार कर रहे हैं। वेद हमें निर्भय होनेका उपदेश देते हैं। हमारा कोई भी देवी देवता निःशस्त्र और पलायनवादी नहीं है। हमारे विजीगीषु पूर्वजोंने बहुतसा वैभव प्राप्त किया। संसारसे विमुख होने या उसे छोडकर जानेका उपदेश वेद हमें नहीं देते। जगतोद्धारके लिए जीवन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्पण करनेवाले ऋषियोंके जीवनादर्शको वेदोंने हमारे सामने रखा है। श्री पंडितजीने गीतापर "पुरुषार्थबोधिनी" लिखकर गीताका वास्तविक अर्थ विशद किया है।'

इसके बाद श्री पंडितजीकी सेवाओंके प्रति अपनी श्रद्धांजली अर्पण करते हुए श्री श्रीकृष्णजी अग्रवालने कहा—

'पिछले २००० वर्ष हमारे लिए क्रियाहीनताके रहे हैं। पर स्वतंत्रताके पश्चात् कुछ आशा बंधी कि भारतमें भारतीय संस्कृति पनपेगी और हमारा राष्ट्रीयचरित्र ऊंचा उठेगा। पर यह अब न हो पाया। आज भारत पतनकी सीमा पर है। इसने अपना सब कुछ खो दिया है। इसका कारण है वेदोंकी उपेक्षा।'

'वेद माता आज्ञा देती है कि तुम कायरता छोडो, अपने शत्रुओंको पराजित करो। पुरुषार्थसे वैभव प्राप्त करो। यह संसार मिथ्या नहीं है। इसका अनासक्तभावसे उपभोग करो। इस मानवजीवनको सुन्दर बनाओ। वेदज्ञान भगवती भागीरथीका वह पवित्र जल है जिससे हमारा जीवन धन्य हो सकता है। यदि हमें सम्मानका जीवन व्यतीत करना है, तो वेदोंको अपनाना होगा। श्री पंडितजीकी कृति मेरी इस बातकी साक्षी है। भगवान् इनके ध्येयको पूरा करें।'

इसके बाद गुजरातके सूक्तसेवक एवं म. गांधीजीके सच्चे अनुयायी महाराज रविशंकरजीने कहा कि—'अपने सौ वर्षके जीवनमें श्री पंडितजीने शरीर और मनका किस प्रकार उपयोग किया, वह हमें सीखना है। जिससे जीवन और ज्ञानका पूरा पूरा उपयोग करके उसकी अभिवृद्धि हो सके, यह काम भी हमारा ही है।'

इसके बाद सत्कार समितिके अध्यक्ष सर्वोच्च न्यायालयके निवृत्तन्यायाधीश एवं बनारस हिन्दुविश्वविद्यालयके भू. पू. उपकुलपति श्री एन. एच. भगवतीने श्री पंडितजीके कार्य एवं जीवनका संक्षिप्त परिचय देते हुए कहा कि—

'श्रीपंडितजीका जन्मस्थान महाराष्ट्र है, पर उनका कार्यक्षेत्र गुजरात रहा है। इन्होंने वेदोंके प्रकाशन द्वारा देशकी जो सेवा की है, वह अमर है। मध्यकालमें वेद करीब करीब अदृश्य ही हो गए थे, पर पंडितजीने अपने कार्यसे उसे पुनरुज्जीवित किया। इनके द्वारा किए गए कार्योंके लिए आगे आनेवाली पीढी इनकी ऋणी रहेगी। सादा और सात्विक जीवन बितानेवाले इस महामानवके हृदयमें समाज और राष्ट्र सदा निवास करते हैं। ध्यान, धारणा, निरंतर स्वाध्याय और वेद सेवाके कारण पंडितजी साक्षात् वेदमूर्ति बन गए हैं। वेदवाङ्मय संस्कृतका खजाना है और पंडितजी वेदोंके आदेशानुसार जीवन व्यतीत करनेवाले ऋषियोंके प्रतीकात्मक आदर्श हैं।'

वेदोंका कार्य एक प्रचण्ड और व्ययसाध्य कार्य है। अतः हम इस बातकी कोशिश कर रहे हैं कि समितिकी तरफसे पंडितजीके इस कार्यके लिए १ लाख रुपये एकत्रित किए जाएं। यह धनसंग्रहका कार्य प्रारंभ हो गया है। पंडितजी आज सौवें वर्षमें प्रवेश कर रहे हैं। अतः इन्हें हम कोटि प्रणाम करते हैं।'

इसके बाद विविध संस्थाओंकी ओरसे फूलहार अर्पण किए गए।

इसके बाद सत्कारसमितिके कोषाध्यक्ष श्री पी. वी. मङ्गलवेढेकरने मानपत्र पढकर सुनाया—

× × ×

प्रातःस्मरणीय श्रीमान् पंडित श्रीपाद दामोदर सातवळेकरजीके चरणोंमें—

अपने जीवनके पूर्वार्धमें, भारतभूमिके स्वातंत्र्यसंग्राममें, प्रथम क्रान्तिवीरके रूपमें पश्चात् एक सत्याग्रही सैनिकके रूपमें आपने जो मूल्यवान् योगदान किया है, वह भारतीय युवकवर्गके लिए सदैव प्रेरणादायी रहेगा।

भारतकी आध्यात्मिक संस्कृतिके प्राण समान, विशेषतः सांगवेद साहित्यका तलस्पर्शी अभ्यास करके उस साहित्यका तेजस्वी और प्रेरक सन्देश भारतमें पहुंचानेके लिए संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और मराठी भाषामें सैंकडों प्रवचन करके तथा अनेकों विद्वत्तापूर्ण लेख लिखकर आपने पिछले साठ वर्षोंमें जो भगीरथ प्रयास किया, उसके लिए प्राचीन भारतीय संस्कृतिके असंख्य उपासक आपके ऋणी हैं।

आज सारा जगत्, दो विचारधाराओंमें फंस जानेके कारण अपना समतोल खो बैठा है। इन दो विचारधाराओंमें एक विचारधारा है पश्चिममें प्रतिष्ठित मानवतावर्धमके चमकदार नामसे युक्त इन्द्रियसुखवाद और दूसरी विचारधारा है भारतमें हजारों वर्षोंसे प्रतिष्ठित संन्यासधर्मका आश्रय लेकर प्रबल हुआ हुआ जीवनपराङ्मुख निष्क्रियतावाद। इन दोनों विचारधाराओंके प्रचण्ड वेगसे दुनियांके विचारकोंका मन डांवाडोल हो गया है। ऐसी विषम परिस्थितिमें अभ्युदय और निःश्रेयस इन दोनोंका मिलन करनेवाले वैदिकधर्मका तेजस्वी सन्देश आपने जगत्की व्याकुल जनताके सामने रखकर उसे फिर प्रतिष्ठित करनेका जो प्रयत्न किया है उसके लिए, हे साक्षात्कृतधर्मा महर्षे! केवल भारत ही नहीं, अपितु सारा संसार आपका ऋणी है।

निष्कलंक चारित्र्य, महान् त्याग, प्रगाढ पांडित्य, वेद विद्याकी अखण्ड उपासना, प्राणायामादि योग व्यायामसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्त किया हुआ स्पृहणीय आरोग्य, दीर्घायुष्यसे समृद्ध और भव्योदात्त हुआ हुआ आपके जीवनके प्रति अपना उत्कट आदर प्रदर्शित करनेके लिए भारतकी समस्त शिक्षित प्रजाने महामहोपाध्याय, डी. लिट्., वेदमार्तंड, गीतालंकार, ब्रह्मर्षि आदि अनेकों पदवियां आपको दी हैं। पर उनसे तो आप क्या विभूषित होते, उलट वे उपाधियां आपके नामके साथ जुड जानेसे स्वयं विभूषित हुई हैं।

आप प्राचीन भारतीय ऋषिमुनियोंके समान शांत और पवित्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं, पर भारतीयोंकी दृष्टिसे तो यह आपका एकसौ बीस वर्षका (विंशशत वार्षिक) अखंड रूपसे चलनेवाला जीवन सत्र है। इस सत्रके तृतीय अर्थात् सायंसवनके मध्यमें आप आकर पहुंच गए हैं। इस यज्ञकी योग्य समयपर समाप्ति हो, तबतक और उसके बाद भी भगवान् सविता आपको उत्तम आरोग्य और दीर्घायु प्रदान करें, यह प्रार्थना करनेवाले—

हम हैं—

आपके वात्सल्यपूर्ण आशीर्वादके अभिलाषी

समस्त गुजरातके नागरिक

दिनांक : २४ दिसम्बर १९६६

× × ×

इसके बाद समारोहके विशेष अतिथि गुजरातके राज्यपाल श्री नित्यानन्द कानूनगोने गुजरातकी जनताकी तरफसे श्री पंडितजीको एक स्वर्णचषकके साथ चांदीके एक सुंदर कास्केटमें मानपत्र तथा ५००१ रु. की थैली अर्पण करते हुए हिन्दीमें कहा—

'१९३० में जब सब जगह उदासीनताका अन्धकार फैला हुआ था, और लोगोंमें आत्मविश्वास नष्ट हो चुका था, उस समय आगे बढकर महत्त्वपूर्ण काम करनेवाले जिन महान् व्यक्तियोंके नाम इतिहासमें अंकित होंगे, उनमें राजनैतिक क्षेत्रमें महात्मा गांधीका नाम स्मरणपूर्वक लिखा जाएगा। उसी तरह जिन सन्तमहन्तोंने लोगोंमें आत्मविश्वास पैदा करनेके कार्य किए, उनमें सन्त श्री सातवलेकरका नाम अग्रगण्य रहेगा।'

'श्री पंडितजीका कार्य किसी एक सम्प्रदाय या जातिका कार्य नहीं है, यह समस्त मानवताका कार्य है। भगवान् करें कि श्री पंडितजी बहुत समयतक रहकर अपने कार्यसे जनताजनार्दनकी सेवा करें।'

अन्तमें सम्मानका प्रत्युत्तर देते हुए श्री पंडितजीने कहा—

'यदि मैं वेदोंकी सेवा न करता तो आज आप मेरा सम्मान न करते। अतः यह सम्मान वेदोंका ही सम्मान है' ऐसा मैं समझता हूँ।'

'वेदोंके अध्ययनसे पता चलता है कि वेदोंमें केवल देवताओंकी प्रार्थनायें ही नहीं हैं। उनमें विज्ञान, चिकित्साशास्त्र और राजनीति आदि भी है। ३ दिन और ३ रात-तक बिना कहीं उतरे निरन्तर उडनेवाले विमानोंका वर्णन वेदोंमें है। पक्षीके आकारवाले ये विमान होते थे। च्यवन नामका एक ऋषि था, जो इतना वृद्ध हो चुका था कि अपनी जगहसे हिलना भी उसके लिए असंभव था, साथ ही वह अन्धा था। पर देवोंके वैद्य अश्विनीकुमारोंने उसकी चिकित्सा की तथा उसे पूर्ण जुवान बनाकर उसका विवाह भी कर दिया। विवाह उसके तारुण्यकी परीक्षा थी। इसी प्रकार विश्पला नामकी एक स्त्री युद्धमें गई और लडते हुए उसका पैर कट गया। अश्विनीकुमारोंने उसके एक लोहेकी टांग लगा दी और उसे चलने फिरने योग्य बनाया। यह शल्यक्रिया आजके वैज्ञानिक युगमें भी असंभव है। इतना विज्ञान वैदिकयुगमें था।'

'वेदोंमें राजनीति भी है। वैदिकयुगमें राज्यकी पद्धति प्रजातंत्रात्मक थी। वेद कहता है—

आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये॥

अर्थात् प्रजा उन्हीं लोगोंको लोकसभामें चुनकर भेजे, जो दूरदर्शी, मित्रकी तरह प्रजाओंका हित करनेवाले और विद्वान् हों।'

उन्होंने आगे कहा—'भारत सदासे गौपूजक रहा है। प्राचीन भारतमें घरमें आये अतिथिका गौदुग्धसे सत्कार किया जाता था। वेदोंमें गौको रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, आदित्योंकी बहिन और अमृतका केन्द्र कहा है। इसलिए उसे मारना योग्य नहीं। गौदुग्धके अन्दर आयुको दीर्घ करनेकी शक्ति है, जो किसी और पशुके दूधमें नहीं है। अतः देशकी प्रजाके स्वास्थ्यका संरक्षण करनेके लिए गौ-संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है।'

'वैदिक संस्कृति सर्वोत्कृष्ट है। उसीसे जगत्का कल्याण संभव है, अतः मैं चाहता हूँ कि सारे विश्वमें वैदिकधर्मका प्रचार हो और उसके बताये मार्गपर सारा विश्व चले। तभी विश्वशान्ति संभव है।'

पंडितजीके भाषणके बाद प्रि. एच. के. त्रिवेदीने आगन्तुकोंका आभार माना और 'वन्देमातरम्' के राष्ट्रगानके बाद सभाकी समाप्ति हुई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुजरात राज्यकी

वेदमूर्ति पं. सातवलेकर जन्मशताब्दी सत्कार-समिति

☆

अध्यक्ष :

श्री. एन्. एच्. भगवती
(निवृत्त न्यायमूर्ति, सर्वोच्च न्यायालय)

उपाध्यक्ष :

श्री. उत्सवभाई परीख
शेठ श्री चतुर्भुजदास चिमनलाल
डॉ. सी. एस्. पटेल
श्री. उमाशंकर जोशी

मंत्री :

श्री. कृ. रा. संत
श्री. चंद्रकांत गांधी
प्रि. एच. के. त्रिवेदी
प्रा. दिनकर पु. महेता

कोषाध्यक्ष :

प्रा. पी. व्ही. मंगळवेढेकर
प्रा. व्ही. सी. गज्जर

कार्यकारिणी समिति :

श्री. श्रीकृष्ण अग्रवाल
श्री. इन्द्रवदन नाणावटी
श्री. हीरालाल भगवती
श्री बी. के. मजमुदार
श्री. प्रि. एम. एस. पंडित
प्रि. पुरुषोत्तम ग. मावळंकर
डॉ. भोगीलाल सांडेसरा
प्रि. चिमनभाई पटेल
डॉ. जयन्त हरिभक्ति
श्री. नंदवाणा

प्रेरक सदस्यगण :

शेठ श्री कस्तुरभाई लालभाई
श्रीमन्त फतेहसिंहराव गायकवाड
शेठ श्री जयकृष्ण हरिवल्लभदास
पं. सुखलालजी
शेठ श्री रोहित चिनुभाई
श्री. रसिकलाल छोटालाल परीख
शेठ श्री. जयन्तीलाल भीखाभाई
श्री. प्रभुदास पटवारी
शेठ श्री नवनीतलाल रणछोडलाल
श्री. वामनराव धोळकिया
शेठ श्री चरणदास हरिदास
श्री. ईश्वरभाई पटेल (विद्यानगर)
शेठ श्री अंबालाल हिंमतलाल
श्री. डोलरराय मांकड
शेठ श्री रसिकलाल नगरी
श्री. मगनभाई देसाई
शेठ श्री पोपटलाल भालकिया
प्रा. फिरोझ दावर
शेठ श्री. रमणिकलाल चुनीलाल
श्री. गोरधनदास चोखावाला (सुरत)
शेठ श्री. कान्तिलाल कनैयालाल
प्रि. यशवन्तभाई शुक्ल
श्री. हरिशंकर रेवाशंकर व्यास
डॉ. जी. बी. मोहिले
प्रि. आर. डी. देसाई
डॉ. पी. एच. प्रभु
प्रि. एम. सी. देसाई
प्रि. वी. स. वणीकर
श्री. एस. ए. खेर
प्रि. एस. वी. देसाई
प्रि. डी. डी. देसाई
प्रि. गिरीशभाई पटेल
प्रि. एम. डी. भट्ट
प्रि. जे. सी. त्रिवेदी
श्री. के. का. शास्त्री
प्रि. सी. एल. शास्त्री
डॉ. मिस सोलोमन
श्री. कपिलराय महेता
श्री. चिमनभाई पटेल
श्री. रमणलाल शेठ
डॉ. वी. ए. वणीकर
श्री. ठाकोरभाई ठाकोर
श्री. जेठालाल जोशी
प्रा. आर. वी. आठवले
डॉ. अंबाशंकर नागर
प्रा. आर. सी. त्रिपाठी
प्रा. अनुपराम भट्ट
श्री. नानासाहेब जोशी
श्री. गिरिजाशंकर जोशी
प्रा. श्री. भगवतीप्रसाद पंड्या
प्रि. श्रीकान्त अमीन
श्री. विष्णुदेव पंडित
श्री. नागरदास बाभणिया
डॉ. अमरलाल जोशी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अमृत पान—उषःपान

मूल लेखक— वैद्य ग. पां. परांजपे] [अनुवादक— श्री श्रुतिशील शर्मा

उषःपान

मानव सुखका अत्यन्त लोभी होनेके कारण वह थोडेसे परिश्रमसे होनेवाले कामको भी करनेकी इच्छा नहीं करता। वह चाहता है कि उसे सब सिद्धियां आसानीसे ही मिल जायें। इस कारण उसे वास्तविक सुख तो प्राप्त होता ही नहीं, इसके विपरीत वह हमेशाके लिए रोगी होकर वैद्य और डॉक्टरोंके पास आता जाता रहता है।

प्रकृतिने अत्यन्त सुलभ और परिणाममें हितावह ऐसे अनेकों पदार्थ प्राणियोंके लिए उत्पन्न किए हैं, फिर भी उनसे फायदा लेनेके लिए थोडा सा भी श्रम करनेको मनुष्य तैय्यार नहीं होता, यह अत्यन्त दुःखकी बात है।

हे भारतीयो ! आरोग्यके लिए ईश्वरके द्वारा बनाये गए सुलभ वस्तुओंकी उपेक्षा करनेके कारण हम रोगरूपी गड्ढेमें डूबते चले जा रहे हैं। इस स्थितिको बदलना आवश्यक है। यही आश्चर्य है कि हमारे विद्वान् भी इसकी उपेक्षा करते हैं।

आजके इस वैज्ञानिक युगमें भी प्रकृतिदत्त पदार्थोंका सेवन करके उत्तम आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है।

यों तो कृत्रिम उपायोंसे भी आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है। पर उसकी आवश्यकता नहीं है। इसलिए हरेकको चाहिए कि वह प्रकृतिप्रदत्त पदार्थोंका भरपूर लाभ उठावे।

(१) पानीकी आवश्यकता

मानव तथा अन्य प्राणियोंके जीवनके लिए जो आवश्यक पदार्थ हैं, उनमें हवाके साथ साथ पानी भी एक पदार्थ है। प्राणीके लिए पानीकी जरूरत हमेशा ही रहती है। अन्तरिन्द्रियोंके व्यापारको व्यवस्थित रूपसे चलानेके लिए पानीकी अत्यन्त आवश्यकता होती है।

मनुष्यके शरीरमें ५९ प्रतिशत पानी है।

प्रत्येक क्षणमें होनेवाले श्वासोच्छ्वास, मल, मूत्र, पसीना इनके द्वारा शरीरके अन्दरका पानी क्षीण होता रहता है।

सभी शारीरिक व्यापार एवं मलमूत्रोत्सर्ग व्यवस्थित रूपसे होनेके लिए पानीकी सहायता अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए शरीरमें प्रतिक्षण होनेवाली पानीकी कमीको पूरा करना भी जरूरी ही है।

अन्न पचानेके लिए जिस प्रकार पानी पीना आवश्यक है, उसी तरह रोगोंके समूलनाश करनेके कार्यमें भी जलका बहुत उपयोग होता है। इसी सत्यका अनुभव करके प्राचीन ऋषियोंने जलको "अमृत" कहा है।

इस अमृतपानका उपयोग रोग निवारणमें किस तरहसे होता है, यही हम बतायेंगे।

(२) उषःपानका अर्थ

प्राचीन ग्रंथोंमें उषःपानकी एक विधि बताई है। बडे सबेरे अर्थात् चार घडी रहने पर (करीब ४–४॥ बजे) उठकर नाकसे पानी पीनेको उषः पान कहते हैं।

रातको तांबेके बर्तनमें वस्त्रसे छानकर रखे गए साफ पानीको सबेरे नाकसे पीनेकी धीरे धीरे आदत डालनी चाहिए।

शुरु शुरुमें एक तोला पानी पियें। आगे जाकर अस्सी तोले तक पानीका प्रमाण बढाते जायें। हर सप्ताहके बाद एक एक तोला बढाते हुए १ सेर तक पीनेकी कोशिश करनी चाहिए। एकदम बहुत सारा पानी नहीं पीना चाहिए, इससे लाभके बजाय हानि होती है।

नाकसे पीनेकी आदत होनेतक मुंहसे ही पानी पियें। पर नाकसे पानी पीनेमें ज्यादा फायदा होता है, यह बात ध्यानमें रखें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शौच जानेसे पूर्व मुंह और नाक साफ करके पानी पियें। इस पानीका उपयोग रोग संहारके काममें बहुत होता है। यह बात आर्य ऋषियोंको अच्छी तरह पता थी।

साफ पानी पीना यह एक प्रकार है। उसी तरह दूसरा प्रकार वृंदमाधव नामक ग्रंथमें बताया है। वह भी बहुत गुणकारी है, यह बात अनुभूत है। वृंदमाधवका प्रकार इस तरह है—

'रातको त्रिफलाका काढा छानकर रखे। वह काढा उषःकालमें नाकसे पीये। इससे बुढापे और वार्धक्यके लक्षण समाप्त होकर नेत्रोंकी शक्ति उत्तम होती है।' ×

हरड, बहेडा और आंवला इनका बराबर भाग लेकर उसका चूर्ण करें, इसे त्रिफला कहते हैं। इस चूर्णको कपडछन कर लें। १ तोला त्रिफला चूर्णमें २० तोला पानी डालकर उबालें, फिर इस काढेका उपयोग करें। दुहरे कपडेसे इसे छानकर बोतलमें अथवा चीनी मिट्टीके बर्तनमें रख लें। पीनेके समय पुनः कपडेसे छानकर पीयें।

बिस्तरसे उठनेके साथ ही हाजत महसूस हो और वेगको रोकना मुश्किल हो तो, शौचसे निवृत्त होकर यह पानी पियें।

(३) उषःपानका उपयोग

उषःकालमें ठंडे पानीसे बडी आंतोंके नीचेका भाग उत्तेजित होता है। बडी आंतोंका सारा भाग साफ हो जाता है। रक्ताभिसरणकी गति शीघ्र होनेसे उत्सर्जक इन्द्रियां (उत्सर्जक इन्द्रियें– मल बाहर फेंकनेवाली इन्द्रियें– त्वचा, मूत्रपिंड, पसीनेको पैदा करनेवाली ग्रंथियां) उत्तेजित होती हैं, वे अपना काम जल्दी जल्दी करने लगती हैं।

पानीमें रहनेवाली नैसर्गिक विद्युत् शक्तिके कारण और उसमें रहनेवाले रोग संहारक धर्मोंके कारण रोगोत्पादक जन्तुविष नष्ट हो जाता है।

अपचनके कारण उत्पन्न हुए हुए यूरिआ (urea) फास्फेट्स और क्षार आदि पदार्थ मूत्र मार्गसे निकल जाते हैं और शरीर साफ हो जाता है।

कुछ मनुष्योंको यह डर रहता है कि उषःपानसे बुरा परिणाम होता है। उनका कहना है कि उषःकालमें पानी पीनेसे रक्त पतला हो जाता है! पाचक रस भी पतला हो जाएगा। इस कारण इससे उत्तम परिणाम नहीं निकल सकता।

पर यह डर और शंका शास्त्रीय प्रयोग और अनुभवसे बिल्कुल गलत साबित हुई है।

उषःकालमें पेटमें यदि पानी अधिक हो जाए तो वह मूत्रपिंड द्वारा सोख लिया जाता है और इस प्रकार मूत्र मार्गसे वह बाहर निकल जाता है। कुछ भाग शरीरघटकोंके द्वारा सोख लिए जानेपर वह वहांके द्रवोंमें मिल जाता है और बाकी बचा हुआ पानी पाचक रसको उत्पन्न करनेवाले पंक्रियस आदि पिंडोंपर इष्ट कार्य ही करता है। इस कारण पाचक रस ज्यादा पैदा होकर बचे हुए अन्नको पचानेमें सहायक होता है।

लार और पित्तको प्रेरित करनेका गुण उषःपानमें है। मुंहसे पानी पीनेकी अपेक्षा नाकसे पीना ज्यादा लाभदायक है।

परमेश्वर द्वारा बनाई गई योजनाके कारण नाकके बाल पानीके अन्दरकी गन्दगी पेटमें नहीं जाने देते। नाकसे पानी पीनेसे नाकके अन्दरकी चमडी, गला और अन्ननलिका सभी धुलकर साफ हो जाते हैं। पेटमें रातको इकट्ठे हुए हुए लार आदि पदार्थ पानीमें मिलकर पानीके साथ साथ आंतोंमें ढकेल दिए जाते हैं। आगे चलकर पानीका परिमाण बढानेसे आंतें भी धुल जाती हैं। बडी आंतोंमें, आधे पचे हुए अन्नकी अथवा मलकी चिकनी और छोटी छोटी गांठें पानीकी सहायतासे ग्रहणीमें उतरती हैं।

पहिली और पांचवी सेण्ट्रल क्रेनियल नर्वके अग्रभाग नाकोंकी चिकनी चमडीमें आई रहती हैं। उनपर उषःपानका परिणाम होकर प्रतिक्रियास्वरूप इन नाडियोंपर शामक परिणाम होता है और उसके कारण आंखोंकी कमजोरी आदि दोष दूर होते हैं।

उषःपानके अभ्याससे छोटी आंतें भी सशक्त होती हैं।

उषःपान करनेवाला मनुष्य सब रोगोंसे मुक्त होता है। ऐसा आर्योंने कहा है। विशेष करके आधुनिक तरुण (?) कहलानेवाली पीढीमें सफेद बालोंका होना, चेहरेपर झुर्रियां पडना, आंखोंसे कम दिखाई देना, ये वार्धक्यके लक्षण बहुत दिखाई पडते हैं। इस अकाल वृद्धावस्थाको नष्ट करनेके लिए उषःपानका उपयोग बहुत होता है, ऐसा अनुभव है।

उषः पान करनेसे जीवनशक्ति सतेज बनती है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

× तद्वत् त्रिफलाम्बु निशिस्थं वलिपलितहरं दृष्टिदं श्रेष्ठम्। वृंदमाधव, रसायनाधिकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पानीमें रहनेवाली प्राकृतिक चैतन्य विद्युत् शक्ति विशेषतः शारीरिक सूक्ष्म ज्ञानतन्तुके चक्रपर अलौकिक प्रभाव डालती है। इस कारण उषःपान करनेसे बुद्धि तीव्र होती है। धारणाशक्तिको बढानेमें यह अमृतपान बहुत मदद करता है।

अमृतपान ओजस्विता, तेज और शक्तियोंका विकास करनेवाला, अत्यन्त सुलभ और उत्कृष्ट उपाय है।

सबेरे खाली पेटमें चाय पीनेसे अनेक भयंकर रोगोंके बीज शरीरमें हमेशाके लिए बोनेकी आधुनिक तरुणोंकी प्रवृत्ति और उषःकालमें ईशनिर्मित प्राकृतिक दिव्य अमृतरूप पानी पीकर निरोगी, सशक्त, तेजस्वी, दीर्घायु आदि होनेकी आर्योंकी पद्धति इन दोनोंका विचार करनेपर हमारा अधःपतन क्यों होता है, इसका चित्र स्पष्ट हो जाता है।

चाय पीनेसे आर्थिक और शारीरिक हानि होकर जीवनशक्ति क्षीण होती है। उषःकालसे आर्थिक एवं शारीरिक लाभ होकर जीवनशक्ति बढती है। इसलिए अमृतपानकी तरफ ध्यान देकर उषःकालमें प्रत्येक विद्यार्थी, तरुण और वृद्ध सब तथा लडकियां और स्त्रियां भी यह अमृतपान अवश्य करें।

उषः पानका एक और बडा उपयोग यह है कि अनेक रोगोंका संहार करनेमें यह अमृतपान औषधियोंको भी मात कर देता है। यह रोगोंका संहार किस प्रकार करता है, इसका विवेचन आगे दिया है।

(४) रोग संहार

किस किस रोगमें उषःपानका निश्चित उपयोग होता है, इसकी जानकारी शास्त्रसे होती है। पर अनुभवकी कसौटी पर शास्त्रको कसे बिना उस पर विश्वास नहीं होता। इसका विचार करके पूर्ण अनुभवसे यशस्वी हुए हुए उपयोग हम यहां देते हैं।

(१) बवासीर— इस रोगके मुख्य दो भेद होते हैं, अन्दर और बाहर, सूखा अथवा रक्तस्रावी। बहुत देरतक उकडूं बैठनेसे, शौच साफ न होनेसे, कांखनेसे गुदद्वारके चारों ओरके सूक्ष्म रक्तवाहिनियोंपर दाब पडनेसे रुधिराभिसरणमें विघ्न होते हैं। इस प्रकार प्रतिबंध होनेके कारण उस स्थान पर रक्तका संचय होता जाता है और वहांकी शिरायें फूलने लगती हैं। फूलनेके कारण वे शिरायें अंकुरित हो जाती हैं, फिर इनके अभितप्त (Inflamation) होनेके कारण उस जगह वेदना, आग आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। अनेक बार बहुत पदार्थोंके खानेसे इन शिराओंसे रक्तस्राव होने लगता है, अथवा एकदम सख्त हुआ हुआ मल गुदाद्वारसे रगड कर आनेके कारण इनसे खून पडने लगता है। इसप्रकार अनेक दिनोंतक रक्त पडनेसे मनुष्य बहुत अशक्त होता है। इस रक्त पडनेवाले बवासीरको खूनी बवासीर (Bloody piles) कहते हैं। बवासीरके इस प्रकारपर उषःपान अद्वितीय उपाय है।

उषः पान करनेसे प्रथम उसका परिणाम आंतोंपर होकर उसकी क्रिया उत्तेजित होती है। आंतोंमें अन्दर चिपका हुआ मल ढीला होकर आगे सरकता है। इस कारण रोगीका शौच थोडे दिनोंमें पतला हो जाता है, फलतः रक्तका पडना आदि विकार कम हो जाते हैं।

छै महीनेतक लगातार उषःपानका सेवन करनेपर पुराने बवासीरका विकार भी समूल नष्ट हो जाता है।

(२) शोथ— इस विकारको ड्रॉप्सी (Dropsy) अथवा अनासार्का (Anasarca) कहते हैं। रक्तवाहिनियोंमें किसी तरहकी रुकावट आनेके कारण केशवाहिनियोंमें रक्ताभिसरण मंद हो जाता है। रक्तका जल भाग रक्तवाहिनियोंसे निकलकर शरीरके किसी विशिष्ट भागमें इकट्ठा होने लगता है। द्रवका यह भाग किसी बाह्यप्रदेशमें इकट्ठा हो जाए, तो उसे शोथ कहते हैं

यह विकार स्वतंत्र न होकर दूसरे किसी विकारका उपांग है। मूत्रपिण्ड, यकृत् (Lever) हृदय और फुफ्फुस आदि अवयवोंके रोगोंमें यह विकार उत्पन्न होता है। हृदय और फुफ्फुसोंके रोगोंमें उत्पन्न हुई हुई सूज उषः पानसे दूर होनेका अनुभव नहीं मिला है। पर मूत्रपिण्ड और यकृत्के कुछ विकारोंमें उषःपान बहुत उत्तम कार्य करता है।

मूत्रपिण्ड— (Kidneys) इनमें दाहका प्राचीन रोग हो, तो उसके कारण मूत्रपिण्डमें सफेद कण बढने लगते हैं। उस कारण मूत्रपिण्डकी नैसर्गिक क्रियामें रुकावट होने लगती है और उसमें मैल इकट्ठा होने लगता है, उससे रुधिराभिसरणमें भी रुकावट पैदा हो जाती है, फलतः केशवाहिनियोंसे जलका भाग रिसने लगता है। मैलके इस संग्रहके बढनेके साथ ही सूज भी बढती जाती है।

उपर्युक्त कारणोंसे कितनी ही बार मूत्रपिण्डोंमें स्थित सूक्ष्म पिण्ड सिकुडने लग जाते हैं। कुछ सीमातक यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिकुडन चलती ही रहती है, उस कारण भी उपरोक्त रोग उत्पन्न होकर सूज आजाती है। इस विकार पर उषःपान रामबाण है। उषः पानसे मूत्रपिण्डकी मल बाहर फेंकनेकी क्रिया उत्तम होकर मूत्र बहुत निकलता है और इस कारण यह विकार धीरे धीरे पूरी तरह ठीक हो जाता है।

यकृत्— (Lever) यह इन्द्रिय अशुद्धरक्तको शुद्ध करती है। इसमें पित्त तैय्यार होकर एक नलीके द्वारा वह पित्त आंतोंमें पहुंचता है और वह अन्नके पचनमें मददगार होता है। इस क्रियामें रुकावट होने और इस अवयवमें भी मैल इकट्ठा होनेसे वह सूज जाता है।

उषःपानसे यकृत्की क्रियाको प्रेरणा मिलकर उसमें इकट्ठा हुआ हुआ मैल नष्ट हो जाता है और फिर स्वभावतः ही यकृत्की स्वाभाविक क्रिया उत्तम होकर यह विकार पूर्णतया नष्ट हो जाता है।

(३) संग्रहणी— इस रोगको अंग्रेजीमें क्रॉनिक डायरिआ (Cronic Diarrhoea) अथवा म्यूको एन्टरिटीस (Muco Enteritis) कहते हैं। इसमें पचन क्रियाके बिगडनेसे आंतें दुर्बल हो जाती हैं। आंतोंमें जुकामके समान विकार होकर वह झरने लगता है। बहुत दिनोंतक रहनेवाली अन्दरकी गर्मीसे आंतोंकी चमडी नष्ट हो जाती है और इस कारण पाचनशक्ति बिल्कुल कमजोर हो जाती है। इस रोगमें आंतोंमें घाव भी हो जाते हैं। संग्रहणीका रोगी बार बार शौच जाता है। कभी एकदम बंधा हुआ तो कभी एकदम पतला शौच होना, अपचन, पेटमें वायु आदिके विकार इस रोगसे होते हैं।

उषःपान करनेसे आंतोंकी दुर्बलता खतम होकर वे धीरे धीरे सशक्त हो जाते हैं। आंतोंके भीतर रहनेवाले सूक्ष्मपिण्डोंकी शक्ति बढती है। पाचकरस योग्य प्रमाणमें उत्पन्न होकर रोगी पूरी तरह अच्छा हो जाता है। इस रोगमें यह उपाय सतत दो वर्षतक करें।

(४) उषःपानसे जीर्णज्वरका नाश होता है, ऐसा भी अनुभव है।

' इक्कीस दिनके बाद भी जो ज्वर थोडेसे प्रमाणमें रहता है, तिल्लीका बढना, अग्निमांद्य आदि विकार जिसमें उत्पन्न होते हैं उसे जीर्णज्वर कहते हैं। ' +

इस रोगमें आनेवाला बुखार बहुत थोडे प्रमाणमें होनेके कारण शीघ्र समझमें नहीं आता। पर ऐसे रोगीका शरीर रातको अत्यन्त गाढ निद्रामें बहुत तपता होता है। मुंहका स्वाद अच्छा न होनेसे अन्न नहीं खाया जाता। दुर्बलता धीरे धीरे बढने लगती है।

ऐसा रोगी एकसे चार महीनेतक नित्य उषःपान करे। इससे उसका जीर्णज्वर नष्ट हो जाएगा, भूख लगने लगेगी, तिल्लीका बढना कम होकर वह अपना काम ठीक ठीक करने लगता है।

(५) जठररोग— इस रोगमें अनेक विकारोंका समावेश होता है। विशेषकर अग्निमांद्य, उल्टी, प्यास, दर्द, पित्त, अरुचि, उदावर्त और आनाह ये विकार होते हैं। अब इसके सम्बन्धमें विचार करते हैं—

अग्निमांद्य— खाये हुए अन्नका योग्य रीतिसे पचन न होनेके कारण जाठर रसके रिसनेकी क्रिया धीमी हो जाती हैं। इसमें दो प्रकार होते हैं— (१) आमाशयकी शक्तिका क्षीण होना, (२) आमाशयकी त्वचामें दाह होना। इनमें प्रथम प्रकारको मन्दाग्नि कहते हैं। दूसरे प्रकारमें अरुचि, उल्टी, प्यास लगना आदिका समावेश होता है। कोष्ठगत विकृतियोंके कारण ही ये विकार होते हैं।

उषःपानसे अन्नके अपचित पदार्थोंके पचनेमें मदद होती है। जाठररसके भरपूर मिलनेसे मन्दाग्नि भी हमेशाके लिए अच्छी हो जाती है। विकारके अनुसार एक वर्षतक उषःपान करना चाहिए।

मलावरोध— (कब्जियत) यह विकार अनेक रोगोंका जन्मस्थान है। पर इस राक्षसी विकारका मूल स्थान अग्निमांद्यमें है। अग्निमांद्यके अभावमें यह विकार बहुधा उत्पन्न होता ही नहीं। पचनक्रियामें बिगाड होना ही इसका मूल कारण है। इस कारण उषःपानसे अग्निमांद्यके रोगके कम होनेपर कब्जियत भी कम होने लगती है। उषःपानमें यह विशेषता है कि उसके करनेसे चार पांच दिनोंमें ही शौच साफ होने लगता है और रोगीको आराम होने लगता है। उषःपान १ से लेकर २ वर्षतक करनेसे रोग पूरी तरह अच्छा हो जाता है।

शूल— इसे कॉलिक (Colic) कहते हैं। यह विकार अनेक कोष्ठगत विकारोंका लक्षण है। मल, अपक्व अन्न, गॅसका संचय, आमाशय और आंतोंमें ग्रंथि, व्रण आदि

+ त्रिसप्ताहव्यतीते तु ज्वरो यस्तनुतां गतः। प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते॥ (तंत्रान्तरम्)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्पन्न होकर अपचन बढने लगता है और इस कारण पेटमें दर्द होने लगता है।

इसी प्रकार खानेके रंगोंमें सीसा मिला हुआ होता है, ऐसे पदार्थोंके पेटमें जानेसे उसका परिणाम रक्तपर होनेसे शूल होता है, उसे टॉक्सिक कॉलिक कहते हैं।

शूलका तीसरा प्रकार **परिणामशूल** होता है। इसे इण्टेस्टायनल कॉलिक कहते हैं। खाये हुए अन्नका विदाह होकर पेटमें एक आम्ल पदार्थ तैयार होता है। आमाशय और आंतोंमें व्रण भी हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें भोजनके २।३ घंटेके बाद पेट बहुत दुःखने लगता है। अन्नका पचन होनेके बाद पेटका दुःखना बन्द हो जाता है। इस शूलपर उषःपान बहुत जल्दी गुणकारी होता है। यह अमृतपान नित्य करना चाहिए। नवीन हो तो एक ही महीनेमें यह रोग दूर हो जाता है।

आम्लपित्त— जठरकी अन्दरकी चमडीमें दाह होकर उसमेंसे एक खट्टा रस रिसने लगता है। पाचनशक्तिमें बिगाड होनेके कारण अन्नके न पचनेसे यह खट्टा रस पैदा होता है। उस कारण गलेमें जलन, खट्टी डकार, अपचन, थोडा पेटदर्द, उल्टी, पेटमें गॅस आदि होते हैं। यह विकार बहुत कष्टदायक होता है। यह विकार यदि बहुत प्राचीन हो तो दो वर्षतक उषःपान करनेसे यह रोग ठीक हो जाता है। यदि यह विकार बहुत समयसे न हो, तो १–२ मास अमृतपान करें।

आनाह— टिम्पॉनिटस– आमाशयमें अपक्व अन्न अथवा आंतोंमें मलकी गाठें इकट्ठी हो जानेके कारण यह विकार उत्पन्न होता है। आमाशयमें वेदना, प्यास, दर्द, कभी कभी मुंहके रास्ते मल गिरना, सिरमें दाह, मल और मूत्रका अवरोध ये लक्षण इस विकारमें होते हैं। उषःपानका उपयोग इस विकार पर बहुत लाभकारी होता है। विकारके प्रमाणसे १ से ४ मास तक उषःपान करें।

उदावर्त— इण्टेस्टॅनल आबस्ट्रक्शन– आंतोंकी नलीमें कुछ अटक जाता है और उस कारण मलादि पदार्थोंके बाहर गिरनेका मार्ग बंद हो जाता है, इसीको स्रोतोनिरोध कहते हैं। आंतोंमें रहनेवाला द्रवपदार्थ कम हो जाए, अथवा उस द्रवका रक्तमें शोषण हो जाए, तो मलकी गांठें बन जाती हैं। इस रोगमें शौचकी गांठ हो जानेके कारण मलमूत्र बहुत कठिनतासे बाहर निकल पाते हैं। शूल, अंगोंमें जलन आदि विकार होने लगते हैं। यह विकार अगर कुछ दिन रह जाए, तो कमजोरी आ जाती है।

इस विकारको जल्दी ठीक करनेके लिए उषःपानके समान और कोई दूसरा उपाय नहीं है। अमृतपानसे आंतोंका मार्ग स्वच्छ हो जानेसे यह विकार नष्ट हो जाता है। १–४ महीने तक अमृतपान करें।

(६) **रक्तपित्त**— हेमरेज (Hoemorrhage) उष्ण और तीक्ष्ण पदार्थोंका सेवन करनेके कारण नाक, मुंह और गुदद्वारसे रक्तस्राव होने लगता है। मसूडोंसे भी रक्त बहने लगता है। इसमें उषःपान एक उत्तम उपाय है।

(७) **मेदोरोग**— पेटमें आंतोंको लपेटनेवाली एक पतली चमडी होती है। उनके परतोंमें मेदका संचय हो जानेसे पेट बडा दीखने लगता है। इसीको वातबद्ध स्थूलता अथवा बादी कहते हैं। इसपर उषःपान करनेसे मेद संचय कम होता है।

(८) **मूत्राघात**— वैद्यग्रंथोंमें मूत्राघातके तेरह प्रकार बताये हैं, पर वे सब उषःपानसे नष्ट हो जाते हैं, यह बात नहीं है। इस विकारके जिन प्रकारोंपर उषःपानका इष्ट परिणाम होता है। उसकी जानकारी आगे दी जाती है—

वात कुंडलिका— इसमें जननेन्द्रियकी नली सिकुड जाती है। बवासीर, मलावरोध आदि विकारोंके कारण यह रोग उत्पन्न होता है, और इसके कारण मूत्र साफ नहीं होता। ऐसी स्थितिमें भी उषःपान उत्तम काम करता है।

अष्टीला— (Enlargement of prostate) मूत्राशयके अन्तिम भागके नीचे प्रोस्टेट नामका एक लम्बासा पिंड रहता है। इसमेंसे एक द्रव पदार्थ तैय्यार होता है, जो वीर्यमें जाकर मिलता है। इस पिण्डके बढ जानेसे अष्टीला विकार उत्पन्न होता है। इस रोगके कारण मलमूत्रके विसर्जनमें बहुत कष्ट होता है। उषःपानसे प्रोस्टेट पिंडका कार्य उत्तम रीतिसे होने लगता है।

मूत्राशयके पेशियोंकी कार्यशक्ति निर्बल हो जानेके कारण इसके द्वारा मूत्र बाहर फेंकनेका काम ठीक तरहसे नहीं हो पाता। इसे वैद्य **मूत्रातीत** या **मूत्रजठर** कहते हैं। मूत्रा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीतके विकारमें पेशाब करते हुए थोडी पीडा होती है, पर मूत्रजठरमें यह पीडा बहुत ज्यादा होती है। एलोपेथिक डॉक्टर इस विकारको पेरालिसिस ऑफ ब्लॅडर (Paralysis of Bladder) कहते हैं। इस विकारके कारण मूत्राशयके पेशियोंमें आई हुई अशक्तता उषःपानसे नष्ट हो जाती है।

एलोपेथिक पद्धतिमें सप्रेशन ऑफ यूरिन (supression of urine) नामक एक रोग है। इसीको आयुर्वेदमें मूत्रक्षय कहा है। वृक्क (Kidneys) में रक्तसे मूत्रको पृथक् करनेका काम चलता है। यह पृथक्करणका कार्य इस रोगमें ठीक तरहसे नहीं हो पाता, इस कारण पेशाब बहुत थोडा होता है। उषःपानसे वृक्क या मूत्रपिंडोंकी नैसर्गिक क्रिया सुधर जाती है।

मूत्रमें मिलकर अथवा मूत्र निकलनेके प्रारंभमें या अन्तमें वीर्य जानेको मूत्रशुक्र कहते हैं इस पर उषःपान रामबाण है।

मूत्रसाद— सिस्टायटिस्–पेशाबमें स्वाभाविकरूपसे रहनेवाला खट्टापन इस विकारमें नष्ट हो जाता है। तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे और पीलिया जैसे रोगोंसे यह विकार उत्पन्न होता है। इसमें जलनके साथ थोडा थोडा मूत्र निकलता है। इस विकारमें उषःपानकी चिकित्सा बहुत लाभकारी है। इन सभी विकारोंके हिसाबसे १ माससे लेकर दो वर्षतक उषःपान करना पडता है। लाभ उत्तम होता है।

(९) क्षतजरोग— रक्तके विकार– इनमें गण्डमाला, कुछ तरहके कोढ, विसर्प (खुश्की फैलानेवाली खुजली) तिल्ली, विद्रधि (फोडे आदि) खुजली आदि विकारोंका समावेश होता है।

गंडमाला— स्क्रॉप्यूला (Scropula) शरीरके गर्दन, कांख और जांघोंमें जो रसपिण्ड हैं, उन्हें लिंकयाटिक ग्लैण्ड्स कहते हैं। शरीरमें गए हुए विषमय पदार्थ इन ग्रंथियोंमें अटक जाते हैं, और वे वहां सूजन उत्पन्न करते हैं। लींफ (रस) भी रक्तके समान ही एक अत्यावश्यक धातु है। इस धातुकी शुद्धि इन रसपिंडोंमें होती रहती है। इस रोगमें उन उन स्थानोंपर तो परिणाम होता ही है, साथ ही सब खूनमें भी विकृति उत्पन्न हो जाती है। यह गण्डमाला यदि बहुत दिनतक रह जाए और बार बार उत्पन्न होने लग जाए, तो उसे अपची कहते हैं। इस गण्डमाला और अपचीमें उषःपान बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुआ है और उससे इस रोगका समूल उच्चाटन भी होता हुआ देखा गया है। इस रोगमें उषःपान दो महीनेसे लेकर १ वर्षतक करें। गंडमालाका कारण रक्तदोष होनेके कारण इस दोषको निकालनेमें अमृतपान एक उत्तम उपाय है।

अंग्रेजीमें प्सोरायसिस् (Psoriasis) नामका एक विकार है। इस विकारके अन्तर्गत किटिभ और चर्मदल नामक कोढके प्रकार भी आते हैं। इनकी उत्पत्तिमें भी रक्तदोष ही मूल कारण है।

किटिभ- (कोढ) यह नीला, घावके दागके समान खुरदरा और खुश्क होता है।

चर्मदल— यह लाल रंग होता है, और इसमें वेदना, खुजली और फुंसियां होती हैं। इसे इसब कहते हैं। उषःपान कहनेसे रक्तशुद्धि होकर ये विकार धीरे धीरे नष्ट हो जाते हैं। यह काला भी होता है।

अलसक— यह भी कोढका ही एक प्रकार है। इसे लायकन भी कहते हैं। यह भी रक्त विकार ही है। इसमें लाल रंगकी फुसियां होती हैं और उनमें खुजली बहुत होती है।

पामा— इसीको एक्जीमा (Eczema) भी कहते हैं। यह भी रक्त दोषसे ही होता है। बहुत सारी छोटी छोटी फुंसियां होकर उससे पानी रिसता है। उसमें खुजली और जलन बहुत होती है।

विचर्चिका— काले रंगकी, खुजली युक्त, बहुत पानी निकालनेवाली एक फुंसी उठती है। यह सब रक्त विकार ही है।

उपर्युक्त सभी रोगोंमें उषःपानका बहुत फायदा होता है। विसर्प- (Erysipelas) आयुर्वेदमें इसके सात प्रकार बताये हैं। उनमें क्षतज विसर्प पर उषःपान बहुत लाभकारी होता है।

शस्त्रकी चोट, दांत या नाखूनका लगना इन कारणोंसे रक्तमें दोष उत्पन्न होकर रक्त बिगडता है। उस कारण शरीर पर चने बराबर फोडे उत्पन्न होते हैं। ये थोडे काले और लाल रंगके फोडे होते हैं। इसमें सूजन, ज्वर, पीडा और दाह ये विकार होते हैं। यह सूजन शरीरके विभिन्न भागोंमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आने लगती है, शरीरके भागोंपर यह आती है। इसमें उषः-पान यशस्वी होता है।

अगर तिल्ली बढ जाए, तो उषःपान करें, उससे निश्चय-पूर्वक लाभ होता है।

विद्रधि— रक्तमें दोष होनेके कारण शरीरके कुछ भागों पर काले और लाल रंगकी सूजन आ जाती है। उस सूजन पर काले फोडे उठते हैं। बहुत जलन होती है। उसके कारण बहुत दर्द और बुखार हो आता है। इसे ही रक्तज विद्रधि कहते हैं। इसपर उषःपान बहुमूल्य औषधी है।

रक्तमें बहुत गन्दगीके संग्रह होनेसे सारे शरीरमें खुजली होने लगती है। ऐसी स्थितिमें उषःपान करें। चार आठ दिनोंमें लाभ होने लगता है।

(१०) नेत्ररोग— नेत्ररोगके अन्तर्गत पलकें, कनीनिका, दृष्टि और संधिभाग इनका समावेश हो सकता है। ये विकार बहुत हैं। उनमें उषःपानसे अभिलषित फायदा होता है। उनका विवरण यहां दिया जाता है।

अभिष्यंद— (आंख आना) आंखोंमें धूल पडना, धुंआ लगना, ठंडी हवा, अत्यधिक प्रकाश, ज्यादा लिखना पढना आदि कारणोंसे पलकोंका नीचेका भाग और आंखके सफेद भाग इन दोनोंको ढकनेवाली त्वचामें दाह होता है। उसे आंखका आना और अंग्रेजीमें आप्थालिमआ (Opthalmia) कहते हैं।

इस रोगमें आंखोंका दुखना, पलकोंके नीचे ऐसा चुभना मानों कि आंखमें बालू भरी हुई हो, आंखोंकी रक्तवाहिनियोंमें रक्तका संचय होना, आंखोंसे पानी बहना ये विकार होते हैं। यह विकार अधिकतर जल्दी अच्छा हो जाता है। पर पूरी तरह अच्छा होनेके पहले ही लिखने पडनेके कारण आंखोंपर श्रम पडनेसे यह रोग शीघ्र अच्छा नहीं होता, और उसके कारण आगे जाकर आंखोंमें रोंये आदिके विकार हो जाते हैं। इसलिए समयपर इस रोगका प्रतिकार करनेसे दूसरे रोग पैदा नहीं होंगे। उषःपान इस रोगपर उत्तम उपाय है।

शिरोत्पात— (Pannus) इस रोगमें आंखोंमें लाल रंगकी रेखायें दीखने लगती हैं। इसमें कभी दर्द होता है, और कभी नहीं होता। बार बार ये लकीरें उत्पन्न होकर फैलने लगती हैं। यह विकार अधिकतर अभिष्यन्दके कारण होता है। इस पर उषःपान उत्तम काम करता है।

अंजननामिका- अर्थात् गुहेरी (होर्डियोलम Hordulam) कमजोरी ज्यादा मीठा खाना आदि कारणोंसे पलकोंके बालोंके पासके पिण्डोंमें जलन होने लगती है और पलकोंके अग्र भागमें छोटी छोटीसी फुंसियाँ हो जाती हैं, इस कारण पलकोंमें दाह होता है। ये फुंसियां सूजती और फूटती हैं। इस प्रकार ये फुंसियां बार बार पैदा होती और फूटती रहती हैं। इसीको गुहेरी कहते हैं। यह फुंसी लाल रंगकी होती है और इसके पैदा होनेके कारण बहुत कष्ट होता है। यह विकार बार बार हो तो ८-१५ दिन उषःपान करनेसे यह रोग ठीक हो जाता है।

पक्ष्मकोप— (ट्रिक्यासिस Trichiasis) आंखें आनेके कारण पलकोंमें रक्तसंचय हो जानेसे पलकोंका आगे का भाग आंखोंमें पडने लगता है। और उससे आंखोंपर रगड लगनेसे आंखोंमें दर्द होता है। इस रोगको शीघ्र अच्छा करनेके लिए उषःपान जैसा सादा और बिना खर्चका उपाय दूसरा नहीं है।

नेत्रस्राव अथवा नेत्रनाडी— (लेक्रीमेशन) इसके चार प्रकार हैं। रक्तदोषके कारण उत्पन्न हुए हुएको रक्त-स्राव कहते हैं। काले भागकी संधिसे गरम और खून मिला हुआ स्राव बारबार होता है, उसे लासूर कहते हैं। इसपर उषःपान उत्तम परिणाम लाता है।

शोणितार्श— पलकोंकी रक्तवाहिनियोंमें रक्तसंचय हो जानेसे वे नाडियां थोडी अंकुरित हो जाती हैं। यह अंकुर लाल रंगका होता है। यह अंकुर बार बार काटनेपर भी फिर बढ जाता है ऐसी स्थितिमें उनका नाश करनेके लिए किए जानेवाले उपायोंमें उषःपान सर्वोत्तम है।

रोंये— (ट्राकोमा)- पलकोंके अन्दरकी तरफ जो चिकनी और नाजुक चमडी है, उस चमडीमें रक्तसंचय होनेसे उस चमडीके भागपर सरसोंके बराबर लाल लाल दाने हो जाते हैं। उसके कारण खुजली होती है। आंखें भारी हो जाती हैं और आंखोंसे पानी बहने लगता है। यह रोग एक विशेष प्रकारके कीटाणुओंसे होता है। यह स्पर्श संचारी अर्थात् स्पर्शमात्रसे रोगको फैलाते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस विकारकी चिकित्साके लिए आयुर्वेदमें अनेक गुणकारी औषधियां हैं, उनसे यह रोग अच्छा होता है। पर अनेक बार देशी विदेशी दवाइयोंके लगानेपर भी यह विकार अच्छा नहीं होता। ऐसे समय इन रोयोंको फोडकर रक्त निकालें और उषःपान प्रारंभ करें। इससे निश्चयपूर्वक यह रोग नष्ट हो जाएगा।

उत्संगपिटिका— पलकोंके अन्दरके हिस्सेपर लाल लाल दाने होते हैं। उनमें कभी कभी पीप भी भर जाता है। इन दानोंके बीचमें दानोंका एक झुण्ड रहता है। यह विकार भी रक्तदोषके कारण ही होता है उषःपानसे इस विकारमें फायदा होता है।

पर्वनी— आंखोंमें काले और सफेद भागोंके मिलनेके स्थानपर लाल, पतले और गोले दाने हो जाते हैं। थोडीसी सूजन भी आ जाती है। इस विकारमें उषःपान बहुत फायदा करता है।

धूमदर्शी— शोक, ज्वर, श्रम, माथा तपना आदि कारणोंसे दृष्टिमें दोष उत्पन्न होकर सब पदार्थ धुंधले दीखने लगते हैं। इसमें उषःपान उत्तम कार्य करता है।

ह्रस्व दृष्टि (Short sight) दृष्टिमें दोष उत्पन्न होकर दूरकी चीज दीख नहीं पडती। पासकी सूक्ष्म वस्तु अथवा छोटे अक्षर भी दीख नहीं पडते। आंखों पर जोर पडना, सिरदर्द, अशक्तता आदि कारणोंसे यह विकार उत्पन्न होता है।

आजकल इसका प्रसार बहुत अधिक है। इसपर चश्मेका भी उपयोग लोग करते हैं।

इस रोगके होनेपर उषःपान करें। ६–१२ मास तक अमृतपान करनेसे दृष्टिका यह दोष निश्चयसे दूर होता है।

मोतियाबिन्द— इसके पकनेसे पहले इसे आपरेशन द्वारा निकालना संभव नहीं है। उषःपानसे मोतियाबिन्द शीघ्र ही पक जाता है।

(११) मज्जातन्तुओंमें कमजोरीके बढनेसे अथवा मस्तिष्कपर कामका भार ज्यादा होनेसे सिरदर्दका रोग हो जाता है अथवा दिमागमें गर्मी भर जाती है। उषःपानसे यह रोग दूर होता है।

(१२) नकसीर फूटना— (इपिस टॅक्सिस Epis Taxis) ज्यादा व्यायाम, गर्मी, मस्तिष्कसे ज्यादा काम लेना आदिके कारण मस्तककी रक्तवाहिनियोंमें रक्तका संचय होकर उसका दबाव केशवाहिनियोंपर पडता है और कभी कभी उनके फट जानेसे रक्त भी बहने लगता है। यह रक्त जब नाकके मार्गसे बहने लगता है, तब उसे नकसीर फटना कहते हैं। किन्हीं किन्हींकी नकसीर बारबार फूटती है। ऐसोंको उषःपान अवश्य करना चाहिए।

(१३) प्रतिश्याय— गरम पीले रंगका स्राव नाकसे बहता है। उसके कारण मनुष्य कमजोर हो जाता है। उसका रंग पीला हो जाता है। नाकसे भाप निकलने लगती है। इसे पित्त सम्बन्धी प्रतिश्याय कहते हैं।

रक्तज प्रतिश्याय— नाकसे रक्तस्राव होता है। कमजोरी, फीकापन, आंखोंका लाल होना ये लक्षण इस रोगके हैं। नाकसे दुर्गन्धी आती है। नाकसे सूंघना बंद हो जाता है। प्रतिश्यायको अंग्रेजीमें कोराइजा (Coryza) कहते हैं।

इन दोनों प्रकारोंमें उषःपान लाभदायक होता है। अमृतपानके कारण यह रोग शीघ्र पक्व होकर सारा संचित दोष नाकके मार्गसे निकल जाता है।

× इस प्रकार अनेकों विकारोंका नाश इस उषःपानसे होता है, यह बात शास्त्र और अनुभवसे सिद्ध हो चुकी है। उसका अनुभव लेकर सब निरोगी हों। [क्रमशः]

× विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं
पिबति खलु नरो यो घ्राणरंध्रेण वारि।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो–
वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्वियुक्तः ॥ १ ॥
अर्शः शोथग्रहण्यो ज्वरजठरजराकोष्ठमेदोविकाराः,
मूत्राघातास्रपित्तश्रवणगलशिरःश्रोणिशूलाक्षिरोगाः।
ये चान्ये वातपित्तक्षतजकफकृता व्याधयः सन्ति जन्तोः
तांस्तान्नभ्यासयोगादपहरति पयः पीतमन्ते निशायाः ॥ २ ॥ (योगरत्नाकर)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हमारा आर्यनाम ही गौरवपूर्ण तथा सर्वश्रेष्ठ है

(लेखक— श्री आचार्य भद्रसेन, अजमेर)

वैदिकधर्म मासिक पत्रके दिसम्बर अंकमें 'हिन्दु नाम ही मौलिक है इस नामसे श्री पंडित वंशीधर वशिष्ठ का एक लेख निकला है। श्री पंडितजी लेखके प्रारम्भमें लिखते हैं कि दीर्घकालसे हिन्दु शब्दके प्रति भ्रान्तधारणा हमारे सामान्य जनोंमें ही नहीं पाश्चात्यशिक्षा निष्णात विद्वद्जनोंमें भी स्पष्ट दिखाई देती है। मैं समझता हूँ यदि इसी वाक्यको मैं लेखक महोदयके निम्न शब्दोंमें कहूं तो कुछ अत्युक्ति ना होगी। यथा— दीर्घकालसे हमारे अत्युत्कृष्ट तथा गौरवपूर्ण आर्य नामके प्रति भ्रान्तधारणा सामान्य जनोंमें ही नहीं प्रत्युत पाश्चात्य शिक्षासे दीक्षित तथा हिन्दुपनके संस्कारोंसे ओत-प्रोत शिक्षित जनोंमें ही स्पष्ट दिखाई देती है।

मेरी यह दृढ धारणा है कि हिन्दु शब्द चाहे किसी शब्द का भी अपभ्रंश हो, यह शब्द विधर्मियोंने हमारे अन्दर हीनता, दीनता तथा वासनाके भावोंको जाग्रत करनेके लिए विरासतमें दिया है। इसलिए हिन्दु शब्दका चोर, डाकू, गुलाम और काफिर आदि अर्थ किया गया है। इसलिए जबतक पाश्चात्य संस्कारोंसे ओतप्रोत हिन्दुपनके संकार हमारे अन्दर रहेंगे तबतक हम दीन, हीन तथा पराधीन हिन्दु ही बने रहेंगे। मेरा यह दृढ निश्चय है आर्य शब्द हमारे अन्दर गौरव, हमारी सभ्यता, संस्कृतिके उच्च भावोंसे ओत-प्रोत है तथा आर्य अर्थात् वैदिकधर्मका सच्चा प्रतीक यदि कोई शब्द है तो वह केवल आर्य ही है हिन्दु कदापि नहीं।

मैं हिन्दुको सिन्धुसे निकला या अपभ्रंश नहीं मानता, परन्तु जो मानते हैं। श्री पंडितजीने उनका भी इसके विपरीतमें एक शुष्क तर्क देकर खण्डन किया है। उनका कहना है कि यदि मुसलमानों द्वारा 'स' को 'ह' कहनेसे सिन्धु से हिन्दु बन गया तो वह मुसलमान "ह" को भी तो "ह" ही कहते हैं। तथा शुद्ध शब्द तो हिन्दु ही है। फिर सिन्धुसे अपभ्रंश क्यों माना जाय। खेद है कि श्री पंडितजी को इतना भी ज्ञान नहीं है कि किसी भी भाषामें अपभ्रंश शब्दोंकी संख्या बहुत कम हुआ करती है। इसका यह मतलब तो नहीं कि यदि मुसलमानोंने सिन्धुका हिन्दु, सप्ताह का हप्ता, सप्तका हप्त बना दिया है तो वह साकीको भी हाकी, सालमको भी हालम, सब्जका भी हब्ज, सबकको भी हबक कहने लग जायें।

अब जरा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण लीजिये। राजस्थानमें अब भी प्रायः 'स' का उच्चारण 'ह' किया जाता है। जैसे सूजीको हूजी, साथीको हाथी और सोजतको होजत कहा जाता है। इसका मतलब यह तो नहीं कि राजस्थानियोंको सोहनलाल को भी होहनलाल कहना चाहिये। मारवाडके एक आर्य पुरुषके साथ मेरा कई वर्षोंतक सम्पर्क रहा है। उनके पुत्रका नाम शकंर है किन्तु वह अपने पुत्रको हमेशा हंकर ही कह कर पुकारते थे [illegible] ने कभी भी शकंरको शंकरके नामसे नहीं पुकारा। इसका यह मतलब तो नहीं कि वे सर्वत्र 'स' या 'श' को 'ह' ही कहकर पुकारें। जिस स्थान पर मेरा उनके साथ सम्पर्क रहा था उसका नाम सोमेसर था वह सोमेसरको सोमेसर ही कहते थे होमेसर कदापि नहीं। हाँ यदि कोई श्री पंडितजीका ऐसा नियम हो जिसके अनुसार श्री पंडितजीने हि शब्दके आगे इन्दु शब्दका न्दु लगाकर हिन्दु नाम कुनबा जोड दिया है। जिसके सम्बन्धमें आगे लिखा जायेगा। उसी प्रकार यदि सर्वत्र सकारका हकार हो जाता हो, तब हम सम्भवतः ऐसा मान भी लें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आगे चलकर आप लिखते हैं कि हिन्दु शब्द हमारा सर्वोपरि प्राचीन नाम है। सर्वोपरिका अर्थ है सर्वश्रेष्ठ। भला इस हिन्दु शब्दमें कौनसी श्रेष्ठता निहित है। यह हमारी किन गौरवपूर्ण भावनाओंको जागृत करता है। हमारे धर्म, जाति, संस्कृति सभ्यताकी कौनसी उच्चभावना हमारे हृदयमें जागृत तथा अंकित करता है। हिन्दु नाम लेते ही हमारे अन्दर वह कौनसी उच्च भावना प्रकट होती है। इतना ही नहीं, श्री पंडितजीने हिन्दु शब्दको सर्वोपरि ही नहीं प्रत्युत प्राचीन भी बतलाया है। आप पंडितजीके सारे लेखको पढ जायें। श्री पंडितजीने एक भी उदाहरण या प्रमाण हिन्दु शब्दकी प्राचीनताका अपने लेखमें नहीं दिया। हमारी श्रुतिस्मृति गीता, महाभारत, रामायण या उपनिषद् आदि किसी भी प्राचीन ग्रन्थमें हिन्दु शब्दका नाम तक नहीं है। फिर भी हिन्दु शब्द प्राचीन है "किमाश्चर्यमतः परम्"

जैसे किसी बच्चेका नाम ज्योतिषीने रामलाल रखा किन्तु माता पिताने लाडमें उसे लल्ला कहना शुरु कर दिया। जैसा कि पंडितजीने आगे लिखा है। क्या पंडितजी बतलायेंगे कि हमारा हिन्दु नाम कौनसे प्राचीन ज्योतिषी, ऋषि, मुनि, गोतम, कपिल, कणाद, आदिने रखा है। वे सब तो आपके प्यारे नाम अर्थात् लल्लाके ही गुणानुवाद गाते नहीं थकते इनमेंसे किसी एकने भी ये नहीं कहा कि हमारा असली नाम तो आर्य नहीं है उसे तो हम लाडसे पुकारते हैं। हमारा असली नाम तो हिन्दु ही है। क्या पंडितजी किसी भी ऋषि, मुनिका नाम बतायेंगे जिसने कहा है "हमारा असली नाम तो हिन्दु है।" हम तो हिन्दुको लाडसे आर्य कह पुकारते हैं। श्री पंडितजी पहले विशेष्य हुआ करता है फिर विशेषण। यहां तो विशेष्य ही गायब है। फिर आर्य शब्द विशेषण कैसे ?

हमारी सबसे प्राचीन ईश्वरीय धर्मपुस्तक वेद है। मैं श्री पंडितजीसे पूछता हूँ कि वेदमें ऐसा कोई वचन है। जिसमें यह अंकित हो कि हे मनुष्यो ! तुम्हारा असली नाम तो हिन्दु है। आर्य नाम तो मैंने तुम्हारा लाडसे रखा है वेद तो खुले शब्दोंमें आर्य शब्दकी घोषणा करता है।

"अहं भूमिमददामार्याय" हे मनुष्यो ! मैंने भूमिका साम्राज्य आर्यको अर्पण किया है। और देखिये "समस्तु यजमानमार्यं प्रावत" ऋग्वेद। जीवन संग्राममें त्यागशील आर्यकी ही प्रभु रक्षा करता है। अब मैं श्री पंडितजी से पूछता हूँ कि पृथ्वीका राज्य देते समय और संग्राममें एक त्यागी आर्यकी रक्षाकी घोषणा करते समय मनुष्यका असली नाम लिया जाता है या लाडका लल्ला। आर्य अर्थात् आर्यको लाडसे बडा भाई या मां–बाप अपने पुत्र या छोटे भाईको लल्ला कह सकते है किन्तु छोटा भाई अपने बडे भाईको लाडसे लल्ला कहने लग जाय यह कहांकी सभ्यता है। अब जरा रामायणको उलटकर देखिये भरत माता कौशल्यासे कहते हैं—

हे माता कौशल्या जो पाप पापीकी नौकरी करनेसे लगता है, जो पाप सूर्यकी तरफ मुंह करके पेशाब करनेमें तथा गायको ठोकर मारनेसे लगता है। माता मुझे वह ही पाप लगे अगर मेरी अनुमतिसे आर्य वनमें गया हो। यहां छोटा भाई भरत अपने पितृतुल्य बडे भाई रामको आर्य कहकर पुकारता है। क्या यह भी लाड है। हमारा असली नाम तो आर्य ही है। हिन्दु कदापि नहीं इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देता हूँ। महर्षि यास्काचार्यने निरुक्तमें लिखा है "आर्यः ईश्वरपुत्रः" अर्थात् ईश्वर पुत्रका नाम आर्य है। क्या यहां भी आर्य शब्द लाडसे लिखा गया है। क्या ईश्वर आर्य शब्दमें ही लाड करता है। और किसी शब्द द्वारा नहीं।

श्री पंडितजीने इन्दु सरोवरका न्दु तथा हिमालयका हि मिलाकर हिन्दु शब्दकी असम्भव (कल्पना) रचना की है। यह पंडितजीने इन्दु शब्दका अर्थ सरोवर किया है और सरोवरका अर्थ कन्याकुमारी। क्या पंडितजी किसी भी कोष, भूगोल, या इतिहाससे बता सकेंगे कि कन्याकुमारीको इन्दु सरोवर भी कहते हैं। मेरी प्रतिज्ञा है कि पंडितजी ऐसा कहीं भी नहीं दिखा सकेंगे। श्री पंडितजी ! कन्याकुमारी तो अन्तरीप है इन्दु सरोवर नहीं कन्याकुमारीका नाम इन्दु सरोवर रख देना और हिमालयके हि तथा इन्दुका न्दु मिलाकर हिन्दु शब्दको घड देना यह कहांकी बुद्धिमत्ता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आगे चलकर पंडितजी लिखते हैं। जैसे पाणिनी ऋषिने स्वौजस्० सूत्र तथा तिप्तसुझि० सूत्रमें सुप् तथा तिङ् प्रत्याहार बनाया है। इससे पता लगता है कि आदि और अन्तसे उनके बीचका भी ग्रहण हो जाता है। यह प्राचीन परिपाटी है। श्री पंडितजी ! ये सुप् और तिङ् प्रत्याहार हैं। अर्थात् जिनमें संक्षेपसे वर्णोंका समावेश हो जाता है। जिनमें संक्षेपसे वर्णोंका समावेश हो जाय, प्रत्याह्रिन्ते वर्णाः यस्मिन् अर्थात् जिसमें वर्णोंका सूक्ष्मतासे समावेश हो उसे प्रत्याहार कहते हैं।

क्योंकि अष्टाध्यायी ग्रन्थ सूत्ररूप है। सूत्रका अर्थ है संक्षेप। अतः पाणिनी ऋषिको भी सुप और तिङ्का सूक्ष्म रूपमें ही सूत्र बनाना था जैसे– सुप्तिङन्तपदम्। इसलिए पाणिनीऋषिने उपर्युक्त सुप् और तिङ् प्रत्याहार बनाये हैं। प्रत्याहारका अर्थ जिसमें वर्णोंको संक्षेप रूपसे रखा जाय। किन्तु श्री पंडितजीने हि और न्दुको ही प्रत्याहार बना डाला और उसमें देश नहीं वरन, नगर आदिको भी समावेश कर दिया। यदि ऐसा ही है तो "प्रत्याह्रियन्ते देशाः नद्याः पर्वताः यस्मिन् असौ प्रत्याहारः" पाणिनी ऋषि या पातंजली ऋषिको अपने महाभाष्यमें प्रत्याहारका यही अर्थ ही करना चाहिये था। आज जैसे सुप् और तिङ्का अर्थ एक वैयाकरण ही जानता है। अन्य कोई नहीं। हिन्दु शब्दमें नदी, नाले, पहाड, पर्वत ये समा गये हैं। यदि ऐसा है तो श्री पंडितजीने अपने लेखके प्रारम्भमें लेखक "श्री बंसीधर वशिष्ठ न्याय वेदान्त शास्त्री गीता दिवाकर" इतना लम्बा, चौडा नाम लिखा है। उन्हें इतना लम्बा, चौडा नाम नहीं देना चाहिये था अर्थात् श्रीका श्री और दिवाकरका कर दोनों मिलाकर श्रीकर बन जाते हैं। केवल लेखक– श्रीकर इतना ही दे देते तो लोग अपने आप उनके नाम तथा उपाधिको जान जाते क्योंकि उनका नाम तथा उपाधि स्वयं ही श्रीकर शब्दमें अन्तर्भूत हो जाती है। फिर भी श्री पंडितजीने आवश्यक समझा अपना नाम तथा लम्बी, चौडी उपाधिका देना। क्योंकि पंडितजी समझते हैं। जैसे सुप् और तिङ्को एक वैयाकरण ही समझ सकता है दूसरा कोई नहीं। इसी प्रकार मेरे नामके श्रीकर प्रत्याहारको मैं ही समझ सकता हूँ अन्य कोई नहीं। किन्तु हिन्दु एक ऐसा शब्द है जिसकी सम्भव कल्पना न्दुको सभी समझ जायेंगे और हिन्दु शब्दको उच्चारण करते ही एक साधारण मनुष्य भी नदी, नाले, पर्वत, प्रान्त इन सबकी कल्पना कर लेगा और इस निःसार हिन्दु शब्दका महान् गौरव उसके हृदय पटल पर अंकित हो जायेगा भला यह कैसे सम्भव हो सकता है।

आगे चलकर श्री पंडितजी कहते है कि विदेशियोंने हमें मूर्ख बनानेके लिए आर्य शब्दसे पुकारा है। विदेशियोंने हमें आर्य शब्दसे नहीं पुकारा प्रत्युत् विदेशियोंके आनेसे पूर्व हमारी सभी श्रुति, स्मृति, आदि प्राचीन आर्य साहित्य में आर्य शब्द विद्यमान थे। विदेशियोंने तो हमें तथा हमारे देशको जो वरदान दिया है वह यह है कि हम हैं इंडियन और हमारा देश है इन्डिया। आज प्रत्येक विदेशी हमारे देशको इंडिया तथा हमें इंडियन कहकर पुकारता है। फिर आर्य शब्द विदेशियोंका वरदान है, यह कहना अपने आपको धोखा देना है।

आगे चलकर श्री पंडितजी आर्य शब्दके गौरवका गान कर स्वयं आर्य शब्दके आगे नतमस्तक हो जाते हैं। आप लिखते हैं जो श्रेष्ठ कर्म करनेमें प्रगतिशील है, जो आध्यात्मिक, आधिदैविक, तथा आधिभौतिक क्षेत्रमें गतिमान अर्थात् प्रगतिशील है। जो कभी भी निराशामें नहीं बैठता है। जो श्रेष्ठ है वह है आर्य। "जादू वह जो सिरपर चढकर बोले" मैं पंडितजीसे विनम्र भावसे प्रार्थना करता हूँ कि आपने जिन पावन शब्दोंसे आर्य शब्दके गौरवका गान किया है क्या आप कोई ऐसा ऋषि, मुनि या प्राचीन कोष बता सकते हैं जिसमें हिन्दु शब्दका इतनी उदात्त भावनासे गौरवगान किया गया हो। इतना ही नहीं हिन्दु शब्दका यदि किसी संस्कृत ग्रंथमें प्रयोग आया भी है तो जो आजसे लगभग ३०० वर्ष पहले बने हुए मेरुतन्त्र नामक तांत्रिक ग्रन्थमें आया है। उसमें भी हिन्दु शब्दका गौरवगान नहीं किया गया प्रयुक्त हिन्दु शब्दकी निन्दा ही की गई है। जैसा कि लिखा है "हीनं च दूषत्येष हिन्दुरित्युच्यते प्रिये।" अर्थात् हे प्रिये हिन्दु वह है जो हीन अर्थात् पतितको भी गिराना जानता है न कि उसे उपर उठाना हिन्दुकी इस नीच मनोवृत्तिसे प्रिय पाठक परिचित ही हैं।

आगे श्री पंडितजी लिखते हैं "हमारे देशका हिंदुस्थान नाम तो है असली, और भारत है उसका विशेषण। किन्तु विशेष्य शब्द तो लुप्त होता जा रहा है। और विशेषण शब्द

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारत प्रकट होता जा रहा है। यहां पंडितजी हिन्दु शब्दकी निःसारताको स्वयं अनुभव कर रहें हैं। क्या पंडितजी किसी भी प्राचीन ग्रन्थमें यह दिखा सकते हैं कि हमारे देश का असली नाम हिंदुस्थान है। जिस भारत शब्दको पंडितजी हमारे देशका नाम केवल विशेषण नामसे पुकारते हैं। वह विशेषण नाम तो महाभारत पुराणों आदिमें आता है। किन्तु असली विशेष्य हिन्दुस्थान नाम बिलकुल गायब है। फिर जब विशेष्य ही नहीं तब भारत उसका विशेषण ही कैसे। हमारे देशका असली नाम भारत व आर्यावर्त ही है।

आगे चलकर श्री पंडितजी लिखते हैं हिन्दु न दास होनेको पैदा हुआ है और न कोई उसे दास बनानेवाला है। ८०० वर्षतक तो हम अपनेको हिन्दु कहलानेवाले विधर्मियोंके दास बने रहे। २०० सालतक अंग्रेजोंके फिर यह कहना हिन्दुको कोई दास नहीं बना सकता कितनी विडम्बना तथा आत्म-प्रवञ्चना है। जब हम अपनेको आर्य कहते थे तब केवल हम स्वाधीन ही नहीं प्रत्युक्त चक्रवर्ती राज्य करते थे। किन्तु जब हम विधर्मियोंकी कृपासे हिन्दु बने तभीसे ही दीन, हीन, मलिन तथा पराधीन हिन्दु कहलाये, केवल कहलाये ही नहीं परन्तु बन भी गये, इसीलिए तो विधर्मियोंने हिन्दुका अर्थ काफिर और गुलाम अर्थात् दास और पराधीन किया है।

आगे श्री पंडितजी लिखते है इसी एक नामपर पूर्वसे पश्चिम, उत्तरसे दक्षिण सब सन्तों, महन्तों, राजाओं, महाभारत, वीर देशकी धमनियोंमें खून उबलने लगा। किन्तु खून उबलने पर भी हम वही गुलामके गुलाम ही बने रहे। आपने अपने लेखमें पेशवाओंका उदाहरण दिया है। मेरा यह दृढ विश्वास है यदि पेशवाओंमें हिन्दुपन न होता और आर्यत्वका गौरवान्वित नाम उनके हृदयमें अंकित होता तो आगे चलकर पेशवाओं तथा अन्य हिन्दु राजाओंमें परस्पर फूट न पड जाती और कभी भी हम अंग्रेजोंके गुलाम न बनते। परस्पर फूटके ही तो कारण गुरुगोविन्दजी चाहते हुए भी हमारी पूर्णतया रक्षा न कर पाये और अन्तमें हमें मुगलोंका दास अर्थात् गुलाम होना पडा। शिवाजीके समयके राजाओंमें हिन्दुपन अर्थात् गुलामीका बीजारोपण होनेपर ही तो उन्होंने वीर शिवाजीको अपना साथ नहीं दिया। यह है हमारे हिन्दुपनके काले कारनामें।

श्री पंडितजी आर्य शब्दके गुणानुवाद गाते हुए फिर लिखते हैं। आर्य शब्द बडा प्रिय और गौरवपूर्ण था। इसलिये वैदिककालमें हिन्दु नाममें पूर्णतया विलीन हो चुका था। अब जब कि वैदिककालमें हिन्दु शब्द था ही नहीं जैसा कि हम पूर्व लिख आये हैं फिर भला कौन किसमें विलीन होता। अन्तमें मैं श्री पंडितजीसे विनम्र प्रार्थना करता हूँ। इस विधर्मियों द्वारा प्रदत्त हिन्दु नामके व्यामोहको आप छोडिये और अपने ही शब्दोंमें इस अतिप्रिय तथा गौरवपूर्ण आर्य शब्दको अपनाइये। आप विद्वान् तथा विचारशील हैं। अतः आपको इस सर्वतो विनाशकारी काल्पनिक तथा अनार्ष हिंदुपनका व्यामोह कभी न करना चाहिये।

संस्कृत-पाठ-माला

[२४ भाग]

(संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

प्रतिदिन एक घण्टा अध्ययन करनेसे एक वर्षमें आप स्वयंरामायण-महाभारत समझ सकते हैं।

२४ भागोंका मूल्य	१२.००	१.२५
प्रत्येक भागका मूल्य	.५०	.१२

संस्कृत पुस्तकें

२ सूक्ति-सुधा	.३१	.०६
३ सुबोध-संस्कृत-ज्ञानम्	१.२५	.२५
४ सुबोध संस्कृत व्याकरण भाग १ और २, प्रत्येक भाग	.५०	.१२
५ साहित्य सुधा (पं. मेधाव्रतजी) भाग १	१.२५	.२५

मंत्री— स्वाध्याय मण्डल, पो- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' पारडी, [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साप्ताहिक पत्र अंग्रेजी 'ब्लीट्ज' का प्रलाप :

क्या वैदिक भारतीय अतिथियोंका गोमांससे आतिथ्य सत्कार करते थे ?

(लेखक— श्री शिवपूजनसिंह कुशवाहा)

श्री आर. के. करंजियाके सम्पादकत्वमें अंग्रेजीमें साप्ताहिक 'ब्लीट्ज' बम्बई– १, ब्लीट्ज पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, पटेल हाउस, १७/१७ एच्. कावसजी पटेल स्ट्रीटसे प्रकाशित होता है। इसके दिसम्बर १०, शनिवार १९६६ के पृष्ठ १४ पर एक अत्यन्त आपत्तिजनक लेख प्रकाशित हुआ है। उसके लेखक मेरठके कोई डा. डी. एन. शास्त्री हैं। आपने आंग्ल भाषामें लिखा है—

" VEDIC INDIANS SERVED BEEF TO HONOURED GUESTS. "

Students of Vedas know that Aryans of the Rigvedic age were not only meat-eaters but had a special liking for beef. When, however, they realized the economic value of the cow, they put a ban on cow slaughter and called the cow as 'aghnya' (not to be killed). That word itself shows that the cow was formerly killed. It is interesting to know that cow was especially slaughtered for serving beef to guests in the Vedic age. One of the words for guests in Sanskrit is 'goghna'.

Its derivative meaning has been explained by Panini himself as 'One for whom a cow is killed'. (III. IV. 73)

गाः हन्यन्ते यस्मै स गोघ्नः अतिथिः
दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने

The practice of serving guests beef continued even when cow slaughter was banned. We find evidence of this in Uttar-Ramacharit, an 8th century drama by Bhavabhuti.

Two students of the hermitage of Valmiki are talking. One tells the other of the arrival of a distinguished guest, Vasishtha, at the hermitage. The other student, obviously of a jovial nature, remarks that he thought some wolf had come to the hermitage because as soon as that distingushed guest arrived, a female calf was slaughtered.'

—Dr. D. N. Shstri, Meerut.

अर्थात्— वेदोंके छात्र जानते हैं कि वैदिककालमें आर्य लोग केवल मांस भक्षक ही नहीं थे, बल्कि गोमांसको विशेष रूपसे पसन्द करते थे। 'तौभी जब गायका आर्थिक मूल्यांकन किया, उन्होंने गौहत्यापर प्रतिबन्ध लगा दिया और गायको, 'अघ्न्या' (नहीं मारना चाहिए) कहने लगे। वह शब्द स्वयं प्रदर्शित करता है कि गाय पहिले मारी जाती थी। यह जानना रोचक है कि वैदिककालमें अतिथियोंको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोमांस परोसनेके लिए विशेष रूपसे गौहत्या की जाती थी। संस्कृतमें अतिथियोंके लिए शब्द 'गोघ्न' है। इसका यौगिक अर्थ पाणिनि द्वारा स्वयं ही समझाया गया है। जैसे 'जिसके लिए गाय मारी जाती है।'

(दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने सूत्रसे जिसके लिए गौ मारी जाती है तब वह गोघ्न ३।४।७३) जब, गोहत्या पर प्रतिबन्ध था तब भी गोमांससे आतिथ्य सत्कारका प्रयोग प्रचलित था। इसकी साक्षी हम 'उत्तररामचरित' भवभूति कृत (८ वीं शताब्दीका) नाटकमें पाते हैं।

वाल्मीकिके कुटीरके दो छात्र बातचीत कर रहे हैं। एक दूसरेसे कुटीर पर प्रसिद्ध अतिथि वसिष्ठके आगमनकी बात करता है। दूसरे छात्रने, जो स्पष्ट रूपसे हंसमुख प्रकृतिका था, लक्ष्य करके सोचा कि कुटीर पर कोई भेडिया आया था, क्योंकि जैसे ही वह प्रसिद्ध अतिथि आया, एक बछियाकी हत्या की गई थी।

समीक्षा— आजकल भारतवर्ष भरमें गोरक्षा महाभियान चल रहा है और आर्य जनता यह चाहती है कि गौवधका कलंक भारतवर्षसे सदाके लिए बन्द हो जाना चाहिए। इस पर वैधानिक प्रतिबन्ध लगानेके लिए लोग सत्याग्रह करके बन्दीगृहमें जाते हैं। पुरीके मान्य श्री शंकराचार्यजी महाराज, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, तथा महात्मा रामचन्द शर्मा, वीर, भूख हडताल कर रहे हैं। सरकार अभी कोई कार्यवाही नहीं कर रही है। ऐसे समय पर कम्यूनिस्ट विचारधाराके वामपक्षी लोग सरकारकी दृष्टिमें अच्छे समझे जानेके लिए गोरक्षाके विरुद्धमें ऊटपटांग वक्तव्य देकर साधारण जनताको पथभ्रष्ट कर रहे हैं। शृंगेरी मठके श्री शंकराचार्य व श्री एम० एन० गोविन्दन नायर, दक्षिणपन्थी कम्यूनिस्टने इसी प्रकार ऊटपटांग वक्तव्य दिया था जिसकी तीव्र आलोचना महात्मा करपात्रीजी महाराजने तथा अन्यान्य विद्वानोंने की है। इसी प्रकार श्री डी. एन. शास्त्रीका वक्तव्य भी भ्रमपूर्ण है। आपने अपना पूरा नाम भी प्रकट नही किया। ईसाइयोंके समान डी. एन. नाम लिख दिया। भारतीय संस्कृतिमें इस प्रकार नाम रखना भी अनुचित है। जब आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि गायके लिए वेदोंमें, अघ्न्या, शब्द है जिसका अर्थ गौको नहीं मारना चाहिए है, तो आपका लेख, वदतो व्याघात, के अनुसार अशुद्ध हो गया। आपने स्वयं अपने लेखका खंडन कर दिया है। यदि किसी ग्रन्थमें यह पाया जावे कि ब्राह्मण, माता पिताकी हत्या नहीं करनी चाहिए तो क्या इसका तात्पर्य यह होगा कि पहिले इनकी हत्या होती थी। वेद तो आदि सृष्टिमें मानव कल्याणके लिए ईश्वरीय ज्ञान है। वेदोंमें गायको मारनेके लिए कहीं भी कोई मंत्र नहीं है। मैं आपको चुनाती देता हूं कि कोई मंत्र प्रस्तुत करें। वेदोंमें तो स्पष्ट रूपसे गौवधका निषेध है—

"गां मा हिंसीः" (यजु० १३।४३)— गौकी हिंसा मत कर।

"अन्तकाय गोघातकम्" (यजु० ३०।१८)— गौके वध करनेवालेको मृत्यु दंड दें।

"उत्सं मा हिंसीः" (यजु० १२।४६) (उत्सं) बैलकी (मा) मत (हिंसी) हिंसा कर।

इस प्रमाणके रहते हुए शृंगेरी मठके श्रीशंकराचार्यजीने कैसे बैलको मारनेका विधान किया ?

"इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुम्" (यजु० १३।४६) —(इमम्) इस (द्विपादम्) दो पांववाले मनुष्य और पक्षियोंकी तथा (पशुम्) किसी भी पशुकी (मा) मत (हिंसीः) हिंसा कर।

'अघ्न्या' शब्द ऋग्वेदमें २०, यजुर्वेदमें ५, सामवेदमें २ और अथर्व वेदमें ३३ स्थलों पर आया है।

आपकी दृष्टिमें गौ पहिले मारी जाती थी तो वह आर्योंके लिए नहीं वरन् राक्षस, पिशाच लोग खाते होंगे।

किसी भी प्रकारके मांस भक्षणका निषेध वेदोंमें है।

'गोघ्न' का वास्तविक अर्थ— गौ आर्य परिवारकी लक्ष्मी है। गृहस्वामिनी भोजनके समय प्रथम ग्रास उसके लिए निकालती है। मांगलिक अवसरों पर सम्मानित अतिथिकी भांति गौको माला पहनाकर सत्कार किया जाता है।

गोघ्नका अर्थ 'जिसके लिए गाय मारी जाती है' भ्रमपूर्ण है। आपने अष्टाध्यायीके सूत्रका अर्थ भी अशुद्ध किया है।

"दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने" (अष्टाध्यायी ३।४।७३) का अर्थ ज्वालापुर महाविद्यालयके आचार्य परम वैय्याकरण पं० गंगादत्तजी शास्त्री [स्वामी शुद्धबोध तीर्थजी] ने अपने 'अष्टाध्यायी भाष्य' में लिखा है— 'गा हन्यन्ते (दीयन्ते)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्मै स गोघ्न ऋत्विगादि' — वह ऋत्विक् आदि गोघ्न कहे जाते हैं जिनको गाय प्रदान की जाती है।

पं ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासुकृत भाष्य— दाश गोघ्नौ १।२। सम्प्रदाने ७।१। सं०— दाशश्च गोघ्नश्च दाशगोघ्नौ, इतरेतरद्वन्द्वः।

अर्थ— दाश, गोघ्न इति कृदन्तौ शब्दौ सम्प्रदाने कारके निपात्येते। कृत्संज्ञकत्वात् कर्तरि प्राप्ते सम्प्रदाने निपात्येते। दाशृ दाने अस्माद् धातोः पचाद्यच् (३।१।१३४) दाशन्ति तस्मै इति दाशः। गोघ्न इति टक् प्रत्ययान्तो निपात्यते, गां-- दुग्धादिकं घ्नन्ति— × प्राप्नुवन्ति यस्मै स गोघ्नोऽतिथिः।

भावार्थ— [दाशगोघ्नौ] दाश तथा गोघ्न कृदन्त शब्द [सम्प्रदाने] सम्प्रदान कारकमें निपातन किए जाते हैं। कृदन्त होनेसे कर्तरि कृत्से कर्तामें जो प्राप्त थे सम्प्रदानमें निपातन कर दिया है। दाशमें दाशृ धातुसे पचादि अच् सम्प्रदान कारकमें हुआ है तथा गोघ्नः में गोपूर्वक हन् धातु से टक् प्रत्यय निपातनसे हुआ है, जो कि प्रकृत सूत्रसे सम्प्रदानमें हुआ। हन्के ह को कुत्व हो हन्तेर्जि० (७।३।५४) से तथा उपधाका लोप गमहनजनखनघसां० (६।४।६८) से हुआ है।

उदा०— दाशः (जिसके लिए दिया जाता है)। गौघ्नः (गौका विकार दूध आदि जिसके लिए प्राप्त किया जाता है, ऐसा अतिथि)। +

प्रो. रामदेवजी बी. ए., गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगडी हरिद्वार

'गोघ्न' शब्द 'गो' और 'हन्' के योगसे बना है। 'गौ' के अनेक अर्थ हैं यथा, वाणी, पृथिवी, जल, स्वर्ग वा विशेष सुख, माता, इन्द्रिय, नेत्र, सूर्य, चन्द्र। 'हन' का अर्थ महर्षि पाणिनि 'हिंसा' और 'गति' बतलाते हैं। और 'गति' के अर्थ हैं ज्ञान, गमन और प्राप्ति, अतः गोघ्नके निम्नलिखित अर्थ हो सकते हैं—

१. जिसके लिए जलकी प्राप्ति की गई हो अर्थात् जिसके लिए जलका प्रबन्ध किया गया हो।

२. जिसके लिए सुखकी सामग्री प्राप्त की गई हो।

३. जिसका वाणीसे सत्कार किया गया हो।

४. जिसकी ओर आंखें लगी हों।

इन अर्थोंको साधारण बुद्धि भी स्वीकार कर सकती है, क्योंकि प्रायः सभी सभ्य देशोंमें जब कभी किसीके घर अतिथि आता है तो उसके स्वागतके लिए गृहपति घरसे बाहर आते हुए कुछ चलता है (गति) उससे प्रिय वचन (वाणी) बोलता है, फिर जल वा दुग्धादिसे उसका सत्कार करता है और यथासंभव उसके सुखके लिए अन्यान्य सामग्रियोंको भी प्रस्तुत करता है, यह जाननेके लिए कि प्रिय अतिथि इन सत्कारोंसे प्रसन्न होता है वा नहीं, गृहपतिकी आंखें भी उसकी ओर लगी रहती हैं। यदि कोई गृहपति दरिद्री भी हो तो वह भी अपने यहां आए अतिथिका सत्कार मीठे वचन और स्वच्छ जलसे अवश्य ही करता है। जब उक्त सभी अर्थ 'गोघ्न' शब्दके हो सकते हैं तो फिर न मालूम इस शब्दके अर्थ यूरोपीय विद्वान् इस प्रकारका क्यों करते हैं जो न केवल वेद, शास्त्र, लोकोक्ति, भारतीय मन आवेश हीके विरुद्ध है प्रत्युत जिसे साधारण बुद्धि भी स्वीकार नहीं कर सकती।' ×

पौराणिक पं. दीनानाथजी शास्त्री, विद्याभूषण, प्रिन्सिपल सं. हि. महाविद्यालय, रामदल, दरीबाकलां, दिल्ली ६ लिखते हैं—

'इसके अतिरिक्त 'हन्' धातुका 'गति' अर्थ भी होता है, केवल 'हिंसा' अर्थ नहीं। पाणिनीय धातु पाठमें, हन् हिंसागत्योः (अ. प. अ.) है। यहां 'हन्' का गमन अर्थ भी

× यहां, हन् हिंसागत्योः, धातु पाठमें पढे होनेसे घ्नन्तिका अर्थ प्राप्त करना है, क्योंकि गतिके ज्ञान, गमन और प्राप्ति तीन अर्थ होते हैं। गौका अर्थ भी यहां निरुक्तके प्रमाणसे नि० ६।५ गौका विकार दूध या चमडा आदि है। [भाष्यकार]

+ अष्टाध्यायी भाष्य प्रथमावृत्ति १-३ अध्याय परिशिष्ट सहित पृष्ठ ६३५ प्रथम संस्करण दिसम्बर १९६४ ई० में मन्त्री श्रीरामलाल कपूर ट्रस्ट, गुरु बाजार, अमृतसर, (पंजाब) द्वारा प्रकाशित।

× द्रष्टव्य, भारतवर्षका इतिहास (वैदिक तथा आर्ष पर्व), तृतीयावृत्ति, पृष्ठ १७५, १७६.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माना है केवल हिंसा नहीं। इसलिए वार्तिककारने भी 'हन्तेर्हिंसायां यङि घ्नीभावो वाच्यः' 'जेघ्नीयते' यह कहकर 'जंघन्यते' इत्यादिमें हिंसासे भिन्न गमन अर्थ भी माना है। यह अर्थ कहनेसे सिद्ध होता है कि हन् धातुका हिंसासे भिन्न अर्थ भी होता है।

एक अन्य विशेष ध्यान देनेकी यह बात है कि "वैदिक निघंटु" २।१४ में गत्यर्थक धातुओंमें 'हन्' धातु भी आया है। अन्य विशेषता यह है कि निघंटु २।१६ में वध अर्थवाले धातुओंमें 'हन्' का प्रयोग सर्वथा नहीं है। गति कर्मक धातुओंमें वहां 'हनति 'हन्ति' हन्तात्' २।१४ यह हन्के प्रयोग आए हैं 'पर वधार्थक ३३ धातुओंमें हन् धातु का प्रयोग सर्वथा नहीं आया, उससे वेदमें 'गोघ्न' आदि शब्दोंमें वध अर्थ वैसे ही किया है। जब वेदमें भी नहीं' तब वेदांग × व्याकरण' कल्प आदिमें भी हनन अर्थ कैसे हो सकता है? तब अर्थ हुआ गां हन्ति गच्छति अस्मै इति गोघ्नोऽतिथिः "अस्मै आतिथ्यार्थे दुग्धादिप्रापणार्थं गोपार्श्वे गच्छति" इस प्रकार अतिथि गोघ्न हुआ- उस अतिथिको दूध देनेके लिए गायके पास गमन करनेसे 'गोघ्न' शब्द बना।" ×

'उत्तररामचरित' आधुनिक नाटक है वेदके सामने नाटक प्रामाणिक नहीं हो सकता' क्योंकि—

"धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परम श्रुतिः"
(मनुस्मृति २।१३)

वेद द्वारा धर्मका निश्चय करें क्योंकि धर्माधर्मका निश्चय बिना वेदके ठीक ठीक नहीं होता।

प्रामाणिक विद्वान् भी 'उत्तररामचरित' को प्रामाणिक नहीं मानते हैं और न अतिथिके लिए गोवध मानते हैं।

पं० दीनानाथजी शास्त्री पुनः लिखते हैं—

'यह कर्तव्य है—यह कर्तव्य है—उसमें शास्त्र ही प्रमाण होता है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में लिखा है— 'तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ (१६।२४)। नाटक शास्त्र कोटिमें नहीं आ सकता तब उसका प्रामाण्य भी क्या हो। इसके अतिरिक्त उत्तररामचरितमें यद्यपि सीता रामचरित्र है' तथापि उसमें वाल्मीकि रामायणसे भिन्न बहुतसी बातें मनः कल्पित हैं। आत्रेयी आदि बहुतसे पात्र कल्पित बनाए गए हैं। उनका वेदान्त आदि वाल्मीकिसे पढना सब मनघडन्त जोडा गया है। वाल्मीकि रामायणमें किसीके सत्कारमें वत्सतरीका विशसन नहीं कहा। श्री वसिष्ठ ने विश्वामित्रका सत्कार फल फूलोंसे किया 'न कि गायके विशसनसे।...

उत्तररामचरितकारको यह व्यवहार (वत्सतरी—विशसन) इष्ट नहीं बल्कि वैसे करानेवालेको व्याघ्र या वृक कहलवाकर उस अर्थका उपहास किया गया है। वसिष्ठको वहां वैसा पात्र बताकर वसिष्ठ स्मृतिके पहले बताए वचनको कइयोंके मतमें वैसे अर्थवाला सूचित किया गया है 'पर वसिष्ठकी वैसी घटना न वाल्मीकि रामायणमें कहीं संकेतसे भी आई है' न ही वसिष्ठका वह अर्थ है।.....

वस्तुतः यहां और रहस्य है 'गायका दूध प्रायः अतिथि के कार्यमें लग जानेसे यह वत्सतरी (बछिया) के लिए नहीं बचा होगा' इसलिए वह बेचारी भूखसे चिलचिलाती होगी। यही 'वत्सतरी मडमडायिता' से संकेत मिलता है। सो आतिथ्यार्थ वत्सतरी विशसन यहां भी हो जाता है। श्री जनक ने क्षत्रिय होनेसे वा वानप्रस्थ होनेसे मुनिका गायका दूध आदि स्वीकार नहीं किया इसलिए वहां उसके लिए कहा है— 'वत्सतरी विसर्जिता' ✠

अतः इन सभी उपर्युक्त प्रमाणोंके आधार पर श्री डी. एन. शास्त्रीका लेख व्यर्थ है।

× "श्रीसनातनधर्मालोक" (६) प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३४८,३४९

✠ वही, पृष्ठ ४४०, ४४१, ६४२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११०५ एतत् त्यत् त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥ १७ ॥

११०६ दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत् क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत् सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥ १८ ॥

११०७ विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥

अर्थ— [११०५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (प्रष्टि-भिः) समीप रहनेवाले ऋषियोंके साथ (ऋज्र अश्वः) ऋज्राश्व, (अम्बरीषः) अम्बरीष, (सहदेवः) सहदेव (भयमानः) भयमान और (सु-राधाः) सुराधस् ये सारे (वार्षागिराः) वृषागिरके पुत्र (ते) तुझ (वृष्णे) सामर्थ्यवान्के लिये (त्यत्) वह (एतत्) यह (राधः) निर्दोष (उक्थं) स्तोत्र (अभि गृणन्ति) गाते हैं ॥ १७ ॥

[११०६] (पुरु-हूतः) जिसे सभी लोग अपने यहां सहायार्थ बुलाते हैं ऐसे इन्द्रने (एवैः) सैनिकोंके साथ मिलकर (पृथिव्यां) पृथिवीपर रहनेवाले (दस्यून्) दुष्ट (शिम्यून् च) और हिंसकोंपर (हत्वा) प्रहार करके (शर्वा) हिंसक वज्रसे उनकी (नि बर्हीत्) जड उखाड दी । तब उस (सु-वज्रः) उत्तम वज्रवालेने (श्वित्न्येभिः) श्वेत वस्त्राभूषणवाले (सखिभिः) मित्रोंके साथ मिलकर (क्षेत्रं) भूमि (सनत्) प्राप्त की, (सूर्यं) सूर्य (सनत्) प्राप्त किया और (अपः) जल (सनत्) प्राप्त किये ॥ १८ ॥

[११०७] (इन्द्रः) इन्द्र (विश्वाहा) सब दिन (नः) हमें (अधि-वक्ता) उत्तम सलाह देनेवाला (अस्तु) हो । हम भी (अपरि-ह्वृताः) कुटिलता छोडकर उसे (वाजं) अन्न (सनुयाम) दें । (मित्रः) मित्र (वरुणः) वरुण (अदितिः) अदिति (सिन्धुः) सिन्धु (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) द्यौ (नः) हमारी (तत्) इस बातको (मामहन्ताम्) बडी प्रेरणा दें ॥ १९ ॥

भावार्थ— सरल मार्गसे चलनेवाले घोडोंवाले, आकाशतक जिनका यश पहुंचा हुआ है, जो हमेशा देवोंके साथ रहते हैं, जो युद्धोंमें शत्रुओंको कंपाते हैं, जो उत्तम ऐश्वर्यवान् हैं, जो अपनी वाणीसे आनन्द बरसाते हैं, ऐसे श्रेष्ठ जन इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ १७ ॥

इन्द्रने जब युद्धमें विजय प्राप्त की और शत्रुओंको जडमूलसे नष्ट कर दिया, तब उसे अपना राज्य मिला, सूर्यप्रकाश मिला और जल प्रवाहित हुए ॥ १८ ॥

इन्द्र हमसे रुष्ट न हो, वह प्रसन्न होकर हमें उत्तम संमति देता रहे यही हमारी इच्छा है। इस प्रार्थनामें मित्र, वरुणादि देव भी हमारी पुष्टि करें ॥ १९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[१०१]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः। देवता- इन्द्रः (गर्भस्राविण्युपनिषद्)। छन्दः- जगती ८-११ त्रिष्टुप्।)

११०८ प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥

११०९ यो व्यंसं जाघृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम्।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥

१११० यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद् यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥

---

[१०१]

अर्थ— [११०८] हे मनुष्यो ! तुम (मन्दिने) उत्साह युक्त इन्द्रकी (पितुमत् वचः) अन्नादिसे युक्त वाणियोंसे (अर्चत) स्तुति करो, (यः) जिसने (ऋजिश्वना) ऋजिश्व राजाके साथ वृत्रकी (कृष्णगर्भाः) अन्धेरेमें छिपी नगरियोंको (निरहन्) नष्ट किया। (अवस्यवः) संरक्षणकी इच्छावाले हम (वृषणं) बलवान् (वज्रदक्षिणं) दाहिने हाथमें वज्रको धारण करनेवाले (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥१॥

[११०९] (यः) जिस इन्द्रने (जाघृषाणेन मन्युना) अत्यधिक क्रोधसे (वि-अंसं) कटे हुए कंधोंवाले असुरको (अहन्) मारा, (यः) जिसने (शम्बरं) शम्बरको मारा, तथा (यः) जिसने (अ-व्रतं, पिप्रुं) व्रतहीन पिप्रु असुरको मारा, तथा (यः इन्द्रः) जिस इन्द्रने (अशुषं शुष्णं नि अवृणक्) सर्व भक्षक शुष्ण असुरको मारा, उस (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ २ ॥

१ यः जाघृषाणेन मन्युना वि अंसं अहन्— इस इन्द्रने अत्यधिक क्रोधसे कंधोंसे रहित असुरको मारा।

[१११०] (यस्य महद् पौंस्यं) जिसके महान् बलका (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक अनुसरण करते हैं (वरुणः यस्य व्रते) वरुण जिस इन्द्रके व्रतमें रहता है, (सूर्यः यस्य) सूर्य जिसके नियममें रहता है, तथा (सिन्धवः) नदियां भी (यस्य इन्द्रस्य) जिस इन्द्रके (व्रतं सश्चति) नियममें चलती हैं, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

१ अस्य व्रते द्यावापृथिवी, वरुणः सूर्यः सिन्धवः सश्चति— इसके नियममें द्युलोक और पृथ्वीलोक, वरुण, सूर्य और नदियां रहती हैं।

भावार्थ— वृत्र इन्द्रका शत्रु है। वह अपनी नगरीको सुरक्षित रखनेके लिए उसमें अंधेरा करता है। इस अन्धेरेके कारण उस नगरीपर इन्द्रका हमला नहीं हो सकता। आजकल भी युद्ध कालमें नगरियोंको अन्धेरेमें रखा जाता है, जिससे उनकी रक्षा होती है। इन्द्र हर तरहकी नीतिमें कुशल है, इसलिए वह असुरोंको तो मारता ही है, पर उनका वंश आगे न चल सके, उनका वंश निर्मूल हो जाए, इसलिए वह (कृष्णगर्भाः) असुरोंकी गर्भवती स्त्रियोंका भी नाश करता है। ऐसे इन्द्रको अपनी सुरक्षाके लिए सब लोग बुलाते हैं ॥ १ ॥

इन्द्रने पहले वृत्रके कंधोंको काट डाला, फिर धर्म और नियमोंका पालन न करनेवाले पिप्रुको भी इन्द्रने मारा, इनके अलावा जनताका शोषण करनेवाले शंबर और शुष्ण इन दोनों असुरोंका भी नाश किया, इस प्रकार सभी असुरोंका इन्द्रने नाश किया ॥ २ ॥

इसी बलशाली देव इन्द्र भगवान्के भयसे द्युलोक, पृथ्वीलोक, वरुण, सूर्य और नदियां अपने अपने नियममें रहते हैं और अपना अपना काम करते हैं। सभी देव अपने नियममें रहते हैं, कोई भी अपने नियमका उल्लंघन नहीं करता। इसी तरह सभी मनुष्य अपने अपने नियमोंमें रहें और अपना कार्य करते जाएं ॥ ३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१११११ यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४ ॥
१११२ यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पति—र्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ५ ॥
१११३ यः शूरैर्भिर्हव्यो यश्च भीरुभि—र्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधु—र्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ६ ॥

अर्थ—[१११११] (यः अश्वानां) जो इन्द्र घोडोंका स्वामी है, (यः गवां गोपतिः) जो गौवोंका स्वामी है, (य वशी) जो सबको वशमें रखता तथा जो (कर्मणि कर्मणि) प्रत्येक कर्ममें (स्थिरः) अचल रहता हुआ (आरितः) प्रशंसित होता है, (यः इन्द्रः) जो इन्द्र (वीळोः चित् असुन्वतः) नियमपूर्वक सोमयाग न करनेवाले शत्रुका (वधः) मारनेवाला है, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ४ ॥

१ वशी— वह इन्द्र सबको वशमें करनेवाला है, किसीके आधीन नहीं रहता ।

२ कर्मणि कर्मणि स्थिरः— वह प्रत्येक कर्ममें अचल रहता है ।

[१११२] (यः विश्वस्य प्राणतः) जो सारे प्राण लेनेवाले (जगतः) संसारका (पतिः) स्वामी है, (यः ब्रह्मणे प्रथमः गाः अविन्दत्) जिस इन्द्रने ब्राह्मणोंके लिए सबसे पहले गायोंको प्राप्त किया, (यः इन्द्रः) जिस इन्द्रने (दस्यून्) शत्रुओंको (अधरान्) नीचे करके (अवातिरन्) मारा, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंवाले इन्द्रको हम (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ५ ॥

१ यः विश्वस्य प्राणतः जगतः पतिः— वह इन्द्र सारे प्राण लेनेवाले जगत्का स्वामी है ।

२ दस्यून् अधरान् अवातिरन्— शत्रुओंको नीचे किया ।

[१११३] (यः शूरेभिः हव्यः) जो शूरवीरोंके द्वारा बुलानेयोग्य, (यः च भीरुभिः) और जो भीरुओं द्वारा भी बुलाने योग्य है, (यः धावद्भिः हूयते) जो युद्धमें भागते हुओंके द्वारा बुलाया जाता है (यः च) और जो (जिग्युभिः) जीतनेवालोंके द्वारा बुलाया जाता है, (यं इन्द्रं विश्वा भुवना) जिस इन्द्रको सारे भुवन (अभि संदधुः) आगे रखते हैं, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको हम (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१ यं इन्द्रं विश्वा भुवना अभि संदधुः— इस इन्द्रको सारा संसार आगे रखता है ।

२ यः शूरेभिः भीरुभिः धावद्भिः जिग्युभिः हव्यः— जो इन्द्र शूरोंके द्वारा, भयभीतोंके द्वारा, युद्धमें भागनेवालोंके द्वारा तथा विजयी वीरोंके द्वारा सहाय्यार्थ बुलाने योग्य है ।

भावार्थ— इन्द्र गौओंका पालन करता है, गौओंको अपने वशमें रखता है, घोडोंका पालन भी उत्तम रीतिसे करता है; घोडोंको उत्तम शिक्षा देकर सुशिक्षित करता है । इन्द्र यज्ञ न करनेवालोंका वध करता है । यज्ञ प्रजाको संगठित करनेका बडा उपयोगी कार्य है, जो इसे नहीं करता, उसे मारना ही चाहिए । यज्ञ द्वारा प्रजाको संगठित करना एक पवित्र कार्य है । इसी लिए इन्द्र इसका प्रचार करता है । इसी तरह राजा अपनी गौओं अर्थात् इन्द्रियोंको वशमें रखे अर्थात् संयमी बने और प्रजाको संगठित करनेवाले उत्तम कार्योंको प्रोत्साहित करे ॥ ४ ॥

इन्द्र भगवान् चलनेवाले और प्राणधारी संपूर्ण विश्वका अधिपति है । सब विश्व इसके अधीन है । इन्द्र शत्रुओंको नीचे गिराकर परास्त करता है । इन्द्र ब्राह्मणके लिए गौवें देता है । ब्राह्मणके घर अनेक विद्यार्थी पढते हैं । ब्राह्मणका घर पाठशाला होता है, वहां बिना मूल्य पढाई होती है, इसलिए विद्यार्थियोंके परवरिशके लिए इन्द्र ब्राह्मणोंको गौवें प्रदान करता है ॥५॥

यह इन्द्र शूरोंद्वारा और भीरुओंद्वारा साहाय्यार्थ बुलाया जाता है, यही युद्धसे भागनेवालोंके द्वारा तथा विजय पानेवालोंके द्वारा भी रक्षा करनेके लिए बुलाया जाता है । इसी वीरताके कारण सब लोग इन्द्रके साथ अपना संबंध जोडते हैं । इसे सब अपना मित्र बनाना चाहते हैं । ऐसे मरुतोंसे युक्त इन्द्रको हम भी अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ ६ ॥

*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१११४ रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥

१११५ यद् वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद् वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥ ८ ॥

१११६ त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भि रस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥ ९ ॥

१११७ मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तु शन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥ १० ॥

अर्थ— [१११४] जो (विचक्षणः) बुद्धिमान् इन्द्र (रुद्राणां प्रदिशा एति) मरुतोंकी दिशामें जाता है, तथा (रुद्रेभिः योषा) मरुतों और उषाके संयोगसे (पृथु ज्रयः तनुते) महान् तेजको फैलाता है, जिस (श्रुतं इन्द्रं) प्रसिद्ध इन्द्रकी (मनीषा अभि अर्चति) मनुष्योंकी मननीय वाणी स्तुति करती है, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ७ ॥

१ विचक्षणः पृथु ज्रयः तनुते— बुद्धिमान् इन्द्र महान् तेजको फैलाता है ।

[१११५] हे (मरुत्वः) मरुतोंसे युक्त इन्द्र ! तू (यद् वा) यदि (परमे सधस्थे) उत्तम घरमें (मादयासे) आनन्दित होता है, (यद् वा) अथवा (अवमे वृजने) छोटे घरमें आनन्दित होता है; (अतः) उस स्थानसे (नः अध्वरं अच्छ आ याहि) हमारे यज्ञमें सीधे आ, हे (सत्यराधः) स्थिर ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (त्वाया) तुझे चाहनेवाले हम तेरे लिए (हविः चकृमा) यज्ञमें हवि देते हैं ॥ ८ ॥

[१११६] हे (सु-दक्ष इन्द्र) उत्तम बलवाले इन्द्र ! (त्वाया) तेरी कामनासे ही हम (सोमं सुषुम) सोमको तैय्यार करते हैं, हे (ब्रह्मवाहः) स्तोत्रोंसे प्राप्त होने योग्य इन्द्र ! (त्वाया) तेरी ही कामनासे हम (हविः चकृम) हवि देते हैं, (अध) अनन्तर हे (नियुत्वः) घोडोंवाले इन्द्र ! (स-गणः मरुद्भिः) मरुद्गणोंके साथ (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (बर्हिषि) आसन पर बैठ और (मादयस्व) आनन्दित हो ॥ ९ ॥

[१११७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (हरिभिः मादयस्व) घोडोंके साथ आनंदित हो, तथा (ये ते शिप्रे) जो तेरे जबडे हैं, उन्हें (विष्यस्व) खोल और (धेने वि सृजस्व) वाणीको प्रकट कर (सु-शिप्र) सुन्दर शिरस्त्राणवाले इन्द्र ! (त्वा) तुझे (हरयः) घोडे (आवहन्तु) हमारे पास ले आवें, हे (उशन्) कामना करनेवाले इन्द्र ! (नः हव्यानि) हमारी हवियोंका (प्रति जुषस्व) प्रेमसे सेवन कर ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्र सदा मरुतोंकी सहायता करता है और इस प्रकार अपने यशको फैलाता है। तब इसके यशको देखकर मनुष्योंके हृदयोंसे निकली हुई स्तुति उस इन्द्रके यशका गान करती है। ऐसे मरुतोंकी सहायतासे युक्त इन्द्रकी हम मित्रता चाहते हैं ॥ ७ ॥

इस इन्द्रको निश्चित रूपसे सिद्धि मिलती है, और इसका पराभव कभी नहीं होता। यह सबको समान दृष्टिसे देखता है, अतः जिस प्रकार बडे बडे श्रीमन्त लोगोंके यहां बुलानेपर जाता है, उसी प्रकार यह बुलानेपर छोटे लोगोंके यहां भी जाता है और वहां जाकर बडे प्रेमसे सोमरसका पान करता है ॥ ८ ॥

यह इन्द्र उत्तम बलवान् तथा दक्षता अर्थात् कुशलताके साथ काम करनेवाला सदा सावधानीसे रहनेवाला है, इसलिये यह विजय पाता है। यह ज्ञानका वाहक है, सब जगह ज्ञानको फैलाता है। यह सदा अपने अनुयायियोंके साथ रहता है। इसी प्रकार राजा भी अपने राष्ट्रमें सब जगह शिक्षाका प्रसार करे और सदा सावधानीसे कुशलता पूर्वक कर्म करते हुए विजय प्राप्त करे ॥ ९ ॥

यह इन्द्र उत्तम शिरस्त्राण धारण करता है तथा तेजस्वी होनेके कारण इसका मुख भी बहुत सुन्दर दीखता है। इन्द्रके रथमें जुडे हुए घोडे हमारे पास इन्द्रको ले आयें, क्योंकि हम इन्द्रको बहुत चाहते हैं ॥ १० ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१११८ मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

[१०२]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; ११ त्रिष्टुप् ।)

१११९ इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत् त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ १ ॥

११२० अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ २ ॥

अर्थ— [१११८] (मरुत् स्तोत्रस्य) मरुतों द्वारा स्तुतिके योग्य तथा (वृजनस्य) शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रसे (गोपाः) संरक्षित (वयं) हम (इन्द्रेण वाजं सनुयाम) इन्द्रकी सहायतासे अन्नको प्राप्त करें, (तत्) इसलिये (मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक (नः) हमें (मामहन्तां) सहायता देवें ॥ ११ ॥

[१०२]

[१११९] हे इन्द्र ! (यत्) जिस कारण (ते धिषणा) तेरी बुद्धि (अस्य) इस मेरे (स्तोत्रे) स्तुतिमें (आनजे) युक्त होती है, इसलिए (महः ते) महान् तेरे लिए (इमां महीं धियं) इस उत्तम स्तुतिको मैं (प्र भरे) करता हूँ । (देवासः) देव गण (प्र सवे उत् सवे च) धनोंको उत्पन्न करने और बढानेके लिए (सासहिं तं इन्द्रं) शत्रुको मारनेवाले उस इन्द्रको (शवसा ननु अमदन्) अपने उत्साहसे आनन्दित करते है ॥ १ ॥

[११२०] (अस्य श्रवः) इस इन्द्रके यशको (सप्त नद्यः बिभ्रति) सातों नदियां धारण करती हैं तथा इसके (दर्शतं वपुः) सुन्दर रूपको (द्यावाक्षामा पृथिवी) द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष लोक धारण करते हैं, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्मे अभिचक्षे) हमें प्रकाश देनेके लिए तथा (श्रद्धे) श्रद्धाके लिए (सूर्याचन्द्रमसा) सूर्य और चन्द्रमा दोनों (कं वितर्तुरं चरतः) सुखपूर्वक आने जानेकी गति करते हैं ॥ २ ॥

१ अस्य श्रवः सप्त नद्यः बिभ्रति— इस इन्द्रके यशको सातों नदियां धारण करती हैं ।

२ दर्शतं वपुः द्यावा क्षामा पृथिवी— इस इन्द्रके सुन्दर शरीरको तीनों लोक धारण करते हैं ।

३ श्रद्धे सूर्याचन्द्रमसा कं चरतः— सत्य ज्ञान देनेके लिए सूर्य और चन्द्रमा सुखपूर्वक विचरते हैं ।

भावार्थ— यह इन्द्र पाप, दुर्भाग्य और दुर्गतिका नाश करनेवाला है । इन्द्र संरक्षण करनेवाला है । ये इन्द्रके गुण हैं और ये ही एक वीरके गुण होने चाहिए । वीरकी इन गुणोंसे शोभा बढती है ॥ ११ ॥

इस इन्द्रकी महिमा बहुत बडी है । यह इन्द्र शत्रुको हराकर उत्कर्ष और प्रकर्षको प्राप्त होता है । देव गण भी धनोंको प्राप्त करनेके लिए और प्राप्त किए धनको बढानेके लिए इस इन्द्रको आनंदित करते हैं ॥ १ ॥

सात नदियां इस इन्द्रके यशको धारण करती हैं । इसके सुन्दर तेजको तीनों लोक धारण करते हैं, इसी इन्द्रके तेजसे प्रकाशित होकर सूर्य और चन्द्रमा प्राणिमात्रको ज्ञान एवं प्रकाश देनेके लिए नियम पूर्वक गति करते हैं । इनकी गति इतनी नियमित होती है कि अत्यन्त वेगसे चलने पर भी वे कभी आपसमें टकराते नहीं । इसी तरह सभी मनुष्योंको चाहिए कि वे नियममें रहकर सुखपूर्वक गति करते रहें ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११२१ तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा स इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥ ३ ॥

११२२ वयं जयेम त्वया युजा वृतं—मस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥ ४ ॥

११२३ नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ ॥

अर्थ— [११२१] हे (नः मनसा पुरुस्तुत मघवन् इन्द्र) हमारी स्तुतिसे अनेक प्रकारसे प्रशंसित और ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! लोग (ते) तेरे (यं जैत्रं) जिस जयशील रथको (संगमे आजौ) सैनिकोंसे होनेवाले युद्धमें (अनुमदाम) उत्साहित करते हैं, (तं स्म रथं) उसी रथको (सातये) हमारी विजयके लिए (अव) प्रेरित कर और हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (त्वायद्भ्यः नः) तेरी कामना करनेवाले हमें (शर्म यच्छ) सुख दे ॥ ३ ॥

[११२२] हे (मघवन् इन्द्र) धनवान् इन्द्र ! (त्वया युजा) तेरी सहायतासे (वयं) हम (वृतं जयेम) घेरनेवाले शत्रुको जीतें, तू (भरे भरे) हर संग्राममें (अस्माकं अंशं उत् अव) हमारे भागकी रक्षा कर (अस्मभ्यं) हमारे लिए (वरिवः) धनोंको (सु-गं कृधि) आसानीसे प्राप्त हो जानेवाला बना, (शत्रूणां वृष्ण्या रुज) तथा शत्रुओंके बलोंका नाश कर ॥ ४ ॥

१ इन्द्र ! त्वया युजा वयं वृतं जयेम— तेरी सहायतासे हम घेरनेवाले शत्रुको जीतें ।
२ भरे भरे अस्माकं अंशं उत् अव— हर संग्राममें हमारे भागकी रक्षा कर ।
३ शत्रूणां वृष्ण्या रुज— शत्रुओंके बलोंका नाश कर ।
४ वरिवः सुगं कृधि-- धन सुखसे मिले ऐसा कर ।

[११२३] हे (धनानां धर्तः इन्द्र) धनोंको धारण करनेवाले इन्द्र ! (त्वा हवमानाः) तुझे बुलानेवाले (इमे विपन्यवः जनाः) ये स्तुति करनेवाले मनुष्य (नाना हि) अनेक हैं, इसलिए (सातये) धन प्राप्तिके लिए तू (अस्माकं स्म रथं आ तिष्ठ) हमारे ही रथ पर आकर बैठ, क्योंकि (तव निभृतं मनः) तेरा शांत मन (जैत्रं) जयशील है ॥ ५ ॥

भावार्थ— इस प्रशंसित इन्द्रका रथ जयशील है, अर्थात् यह जिस संग्राममें जाता है, वहां यह विजय प्राप्त करता ही है, कभी पराभूत नहीं होता । इसी कारण और भी सब सैनिक इस रथको प्रेरित करते हैं, उसी रथको हे इन्द्र ! हमारी ओर प्रेरित कर, और अपनी कृपा हम पर करके हमें सुख दे ॥ ३ ॥

हम घेरनेवाले शत्रुओंको जीतें अर्थात् कोई शत्रु हमें घेर कर परास्त न करे । हम इन्द्रकी सहायतासे हर संग्राममें विजय प्राप्त करें और अपने धनकी रक्षा करें । और इस प्रकार अपने शत्रुओंकी शक्तिका नाश करें, तथा अपने प्राप्त किए हुए धनका हम शत्रुरहित होकर सुखपूर्वक उपभोग करें ॥ ४ ॥

हे धनोंको धारण करनेवाले इन्द्र ! तुझे बुलानेवाले तथा तेरी स्तुति करनेवाले मनुष्य अनेक हैं, अतः तू किन किनकी प्रार्थना सुनेगा और धन देगा । इसलिए तू अपने शान्त और जयशील मनसे विचार कर और अच्छी तरह सोच विचार कर हमारे रथपर आकर बैठ और हमें धन दे ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११२४ गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसा—था जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥ ६ ॥
११२५ उत् ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत् सहस्राद् रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे म—ह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरंदर ॥ ७ ॥
११२६ त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजस—स्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथा—शत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥

अर्थ—[११२४] इस इन्द्रकी (बाहु) भुजायें (गोजिता) गायोंको जीतनेवाली हैं, वह (इन्द्रः) इन्द्र स्वयं भी (अमितक्रतुः) अपरिमित बलवाला, (सिमः) श्रेष्ठ (कर्मन् कर्मन्) प्रत्येक कर्ममें (शतं ऊतिः) सैंकडों प्रकारके संरक्षणके साधनोंको पास रखनेवाला (खजंकरः) संग्राम करनेवाला, (अकल्पः) अद्वितीय (ओजसा प्रतिमानं) बलकी मूर्ति है, (अथ) इसलिए (सिषासवः जनाः) धनकी इच्छावाले मनुष्य उसे (ह्वयन्ते) बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१ (अस्य) बाहू गोजिता— इसकी भुजायें गायोंको जीतनेवाली हैं ।

२ इन्द्रः अमितक्रतुः खजंकरः अकल्पः— वह इन्द्र अपरिमित बलवाला, संग्राम करनेवाला और अद्वितीय वीर है ।

३ कर्मन् कर्मन् शतं ऊतिः— प्रत्येक कर्ममें सैंकडों संरक्षणके साधन अपने पास रखनेवाला है ।

[११२५] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (कृष्टिषु) मनुष्योंमें जो (ते श्रवः) तेरा यश है, वह (शतात् उत्) सैंकडों रूपोंसे अधिक है, (भूयसः उत् च) और भी अधिक है और (सहस्राद् उत् रिरिचे) सहस्रोंसे भी अधिक बढ गया है, (अमात्रं त्वा) अपरिमित बलवाले तुझे (मही धिषणा) हमारी बडी स्तुति (तित्विषे) प्रकाशित करती है, हे (पुरंदर) शत्रुके नगरको तोडनेवाले इन्द्र ! (अधा) इसके बाद तू (वृत्राणि जिघ्नसे) शत्रुओंको मारता है ॥ ७ ॥

१ (अस्य) कृष्टिषु श्रवः शतात् उत् सहस्रात् उत् रिरिचे— इसका मनुष्योंमें यश सैंकडों तथा हजारों प्रकारोंसे भी अधिक है ।

[११२६] हे (नृपते इन्द्र) मनुष्योंके पालक इन्द्र ! तेरे (ओजसः) बलका (प्रतिमानं) परिमाण (त्रिविष्टिधातु) तीन गुना है, तू (तिस्रः भूमीः त्रीणि रोचना) तीन भूमियों और तीन तेजोंको तथा (इदं विश्वं भुवनं) इस सारे भुवनोंको (अति ववक्षिथ) संचालित कर रहा है, तू (सनात् जनुषा) प्राचीन कालसे जन्मसे ही (अ-शत्रुः असि) शत्रुरहित है ॥ ८ ॥

१ जनुषा अ-शत्रुः असि— वह इन्द्र जन्मसे ही शत्रुरहित है ।

२ ओजसः प्रतिमानं त्रिविष्टिधातु— उसके बलका प्रमाण तीन गुना है ।

भावार्थ— इस इन्द्रकी भुजायें गायोंको जीतनेवाली हैं । वह इन्द्र स्वयं भी अपरिमित बलवाला और श्रेष्ठ है । प्रत्येक कर्ममें वह अनेक तरहके सुरक्षाके साधन रखता है तथा सदैव कर्म करनेके कारण ही वह श्रेष्ठ है । जो सदैव उत्तम कर्म करता है, वह श्रेष्ठ होता है । इसी अपनी अतुलशक्तिके कारण वह किसी दूसरेको अपने बराबर भी माननेको तैय्यार नहीं ॥ ६ ॥

मनुष्योंमें इस इन्द्रका यश सैंकडों और हजारों रूपोंसे भी अधिक है अर्थात् अनेकों तरहसे इसका यश मनुष्योंमें बढ रहा है । इसके अतिरिक्त भी मनुष्योंकी स्तुति इस अपरिमित बलवाले इन्द्रका बल बढाती है तब यह शत्रुओंके किलोंको तोडकर वृत्रोंको मारता है ॥ ७ ॥

इन्द्रके बलका प्रमाण तीन गुना अधिक है । अर्थात् वह अपने बलसे तीन गुने अधिक बलवाले शत्रुका बडी वीरतासे सामना करता है । इसी अपने बलके सहारे वह इन्द्र तीनों लोकोंका संचालन करता है । यह जन्मसे ही शत्रुरहित है । जबसे यह जन्मा तभीसे इसने सारे शत्रुओंका विनाश करना शुरु किया, इसलिए इसका कोई शत्रु नहीं बचा ॥ ८ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११२७ त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिद—मिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥

११२८ त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथा—भैष्वाजा मघवन् महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीम—स्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥

११२९ विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अ—स्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

अर्थ— [११२७] हे इन्द्र ! हम (देवेषु प्रथमं त्वां) देवोंमें मुख्य तुझे (हवामहे) बुलाते हैं, (त्वं) तू (पृतनासु सासहिः) युद्धोंमें शत्रुको मारनेवाला (बभूव) हो (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (नः प्रसवे) हमारे युद्धमें (इमं कारुं उपमन्युं उद् भिदं रथं) इस कलापूर्ण, अत्यन्त क्रोधयुक्त, शत्रुओंको खदेडनेवाले रथको (पुरः कृणोतु) आगे करे ॥ ९ ॥

१ देवेषु प्रथमः— सब देवोंमें यह इन्द्र पहिला है ।
२ पृतनासु सासहिः— युद्धोंमें शत्रुको पराजित करनेवाला है ।
३ कारुं रथं पुरः कृणोतु— कलापूर्ण रथको वह आगे करे

[११२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं जिगेथ) तू शत्रुओंको जीतता है, (धना न रुरोधिथ) और धनोंको रोकता नहीं, हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! हम (अर्भेषु महत्सु च आजौ) छोटे और बडे संग्राममें (अवसे) संरक्षणके लिए (उग्रं त्वां) शूरवीर तुझे (सं शिशीमसि) अधिक शक्तिशाली बनाते हैं, (अथ) इसलिए तू (नः) हमें (हवनेषु) युद्धोंमें (चोदय) प्रेरित कर ॥ १० ॥

१ त्वं जिगेथ, धना न रुरोधिथ— तू युद्धोंको जीतता है, पर धनोंको नहीं रोकता । वह युद्धोंको जीतता तो है, पर उसमें प्राप्त हुए धनोंको अपने पास नहीं रखता, अपितु अपने भक्तोंमें बांट देता है ।
२ अर्भेषु महत्सु आजौ अवसे उग्रं त्वां सं शिशीमसि— छोटे और बडे युद्धोंमें अपने संरक्षणके लिए तुझ उग्र वीरको बुलाते हैं ।

[११२९] (इन्द्रः) यह इन्द्र (विश्वाहा) सदा (नः अधिवक्ता अस्तु) हमारे पक्षमें बोलनेवाला हो, हम (अ-परिह्वृताः) कुटिलतासे रहित होकर (वाजं सनुयाम) अन्नादि प्राप्त करें, (तत्) इसलिए (मित्रः, वरुणः अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक (नः) हमें (मामहन्तां) सम्पत्ति दें ॥ ११ ॥

१ अ-परिह्वृताः वाजं सनुयाम— हम कुटिलतासे रहित होकर अन्नको प्राप्त करें ।

भावार्थ— यह इन्द्र देवोंमें सबसे श्रेष्ठ और मुख्य है, वह युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेवाला वीर है । यह सदा अपने उत्साहपूर्ण रथको आगे रखता है अर्थात् भयंकरसे भयंकर युद्धमें भी यह इन्द्र सदा आगे ही रहता है । इतना वीर और निडर यह इन्द्र है । इसी प्रकार राजा युद्धोंमें सबसे आगे रहे और अपने रथको प्रेरित करता रहे । इस प्रकार करनेसे उसकी सेना भी उत्साहित होकर शत्रुको हरानेमें समर्थ होगी ॥ ९ ॥

यह इन्द्र अनेक युद्धोंको करता है और उनमें प्राप्त हुए धनको अपने भक्तोंमें बांट देता है । यह कभी भी अपने पास धन जोडकर नहीं रखता । यह कभी कंजूसी नहीं करता । यह जो कुछ भी संग्रह करता है, वह स्वयंके उपभोगके लिए नहीं, अपितु दूसरोंकी उन्नति एवं हितके लिए धनादिका संग्रह करता है । इसी प्रकार राजा युद्धादिमें प्राप्त धनका कुछ अंश राज्यकोषमें रखकर बाकी धन सैनिकोंमें बांट दे । यह इन्द्र बहुत उदार चित्तवाला है, इसीलिए सब लोग इसे चाहते हैं ॥ १० ॥

यह इन्द्र जिसके पक्षमें होता है, वह पक्ष हमेशा विजयशील होता है, यह बात हम जानते हैं, इसलिए हम उससे यही प्रार्थना करते हैं कि वह सदा हमारे पक्षमें ही रहे, हमसे कभी क्रोधित न हो । हम भी इससे कुटिलतापूर्ण व्यवहार न करें । कुटिलतापूर्ण व्यवहारसे यह इन्द्र निश्चयसे क्रोधित होता है, अतः हम इसे कभी भी क्रोधित न करें । इस प्रकार यदि इन्द्र हमारे पक्षमें होगा, तो निश्चयसे मित्र, वरुण, सिन्धु आदि अन्य देवता भी हमारे पक्षमें रहकर हमारी सहायता करेंगे ॥ ११ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[१०३]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११३० तत् त इन्द्रियं परमं पराचै रधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
क्षमेदमन्यद् दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥

११३१ स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन् व्यंसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥

११३२ स जातूभर्मा श्रद्दधानः ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद् वि दासीः ।
विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्या ऽऽर्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥

[१०३]

अर्थ— [११३०] हे इन्द्र ! (ते तत् इदं परमं इन्द्रियं) तेरे उस उत्तम बलको (कवयः) दूरदर्शी विद्वानोंने (पुरा) पहले (पराचैः) शत्रुको मारनेवाले कर्मोंके रूपमें (अधारयन्त) धारण किया था, (क्षमा अस्य इदं अन्यत्) पृथ्वी पर इस इन्द्रका यह बल और प्रकारका है और (दिवि अन्यत्) द्युलोकमें और तरहका है, (ईं) इसके ये दोनों बल (समना केतुः इव) जैसे संग्राममें ध्वज परस्पर मिलते हैं, उसी प्रकार (सं पृच्यते) परस्पर संयुक्त होते हैं ॥ १ ॥

[११३१] (सः) उस इन्द्रने (पृथिवीं धारयत्) पृथिवीको धारण किया (च पप्रथत्) और फैलाया, तथा वृत्रको (वज्रेण हत्वा) वज्रसे मार कर (अपः निः ससर्ज) जलोंको बहाया (अहिं अहन्) अहि असुरको मारा (रौहिणं अभिनत्) रोहिण असुरका वध किया तथा (मघवा) इस धनवान् इन्द्रने (शचीभिः) शक्तियोंसे (व्यंसं अहन्) व्यंस असुरको मारा ॥ २ ॥

१ सः पृथिवीं धारयत् पप्रथत् च— उस इन्द्रने पृथिवीको धारण किया और फैलाया ।

[११३२] (जातू-भर्मा) बिजलीके अस्त्रको धारण करनेवाला तथा (ओजः श्रद्दधानः) बल पर श्रद्धा रखनेवाला (सः) वह इन्द्र (दासीः पुरः विभिन्दन्) दस्युओंके नगरोंको तोडते हुए (वि अ चरत्) विचरण करता है, हे (विद्वान् वज्रिन् इन्द्र) ज्ञानवान् तथा वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! (अस्य दस्यवे) इस स्तोताके शत्रु पर (हेतिं) आयुध फेंक तथा (आर्यं सहः द्युम्नं वर्धय) श्रेष्ठ पुरुषके बल तथा यशको बढा ॥ ३ ॥

१ आर्यं सहः द्युम्नं वर्धय— आर्योंका बल और तेज बढाओ ।

२ दासीः पुरः विभिन्दन्— शत्रुकी नगरियां तोडता है ।

३ अस्य दस्यवे हेतिं— इसके शत्रुपर शस्त्र फेंक ।

भावार्थ— इस इन्द्रके दो तरहके बल हैं, एक तो इस पृथ्वी पर प्रकाशित होता है और दूसरा द्युलोकमें सूर्यके रूपमें प्रकाशित होता है । ये दोनों बल यद्यपि अलग अलग स्थानों पर प्रकाशित होते हैं, परन्तु ये दोनों मिलते एक ही स्थान पर हैं । जिस प्रकार संग्राममें दो विरुद्ध दिशाओंसे आती हुई दो पताकायें एक निश्चित स्थान पर आकर मिल जाती हैं, उसी प्रकार द्युलोकसे आता हुआ और पृथ्वीपरसे जाता हुआ इन्द्रका बल अन्तरिक्षमें जाकर मिल जाते हैं । तब इस महान् बलका दूरदर्शी वीरगण शत्रुको मारनेके कार्यमें उपयोग करते हैं ॥ १ ॥

उस शूरवीर इन्द्रने अपनी शक्तिसे पृथ्वीका धारण पोषण किया और उसे समृद्धियुक्त करके उसका विस्तार भी किया । पृथ्वीका विस्तार करनेसे पहले वह इन्द्र, अहि, रोहिण, व्यंस आदि असुरोंको, जो नदी आदि पानीके मार्ग रोक कर इन्द्रकी प्रजाओंको कष्ट देते हैं, अपने वज्रसे मार देता है । इसी प्रकार जो अपने राज्यका विस्तार करना चाहे, उसे चाहिए कि वह सर्व प्रथम बाहरी और अन्दरके शत्रुओंका नाश करे । तभी उसका राज्य समृद्धिशाली और विस्तृत हो सकता है ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११३३ तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन् दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥
११३४ तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत् सो अविन्ददश्वान् त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५ ॥
११३५ भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम्
य आदृत्या परिपन्थीव शूरो ऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥

अर्थ— [११३३] (सूनुः) बलके पुत्र (वज्री) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रने (श्रवसे) यशके लिए (दस्युहत्याय उप प्रयन्) शत्रुको मारनेके लिए उसके समीप जाते हुए (यत् नाम दधे) जिस यशको धारण किया था, (तत् कीर्तेन्यं नाम) उस प्रशंसाके योग्य यशको (मघवा) इन्द्रने (ऊचुषे) स्तोताके लिए (इमा मानुषा युगानि) इन मनुष्योंके युगोंतक (बिभ्रत्) धारण किया ॥ ४ ॥

[११३४] (सः गाः अविन्दत्) उस इन्द्रने गायें प्राप्त कीं, (सः अश्वान् अविन्दत्) उसने घोडोंको प्राप्त किया, (सः ओषधीः) उसने औषधी, (सः अपः) उसने जल, (सः वनानि) उसने धनोंको प्राप्त किया, अतः हे मनुष्यो ! (अस्य इन्द्रस्य) उस इन्द्रके (इदं भूरि पुष्टं पश्यत) इस अत्यधिक बलको देखो, और इसके (वीर्याय) पराक्रम पर (श्रद् धत्तन) श्रद्धा करो ॥ ५ ॥

१ अस्य इन्द्रस्य इदं भूरि पुष्टं पश्यत, वीर्याय श्रद् धत्तन— इस इन्द्रके इस अत्यधिक बलको देखो और इसके बल पर श्रद्धा करो ।

[११३५] (यः शूरः) जो शूर इन्द्र (आदृत्य) ज्ञानियोंका आदर करके (परिपन्थी इव अयज्वनः) लुटेरेके समान अपने पास धन जोडकर रखनेवाले तथा यज्ञ न करनेवाले असुरका (वेदः) धन छीनकर उसे ज्ञानियोंमें (विभजन्) बांटता हुआ (एति) जाता है, उस (भूरिकर्मणे) बहुतसे उत्तम कर्मोंको करनेवाले, (वृषभाय वृष्णे) बलवान् दाता और (सत्यशुष्माय) सत्य बलवाले इन्द्रके लिए (सोमं सुनवाम) हम सोम निचोडें ॥ ६ ॥

१ यः शूरः आदृत्य अयज्वनः वेदः विभजन् एति, सोमं सुनवाम— जो शूरवीर ज्ञानियोंका आदर करके यज्ञ न करनेवालोंके धनको छीनकर ज्ञानियोंमें बांट देता है, उसका लोग सत्कार करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— इन्द्रके पास रहनेवाले हथियारोंमें कुछ हथियार ऐसे भी हैं, जो बिजलीसे चलते हैं अथवा बिजलीके समान तीक्ष्ण वार करते हैं, ऐसे आयुधोंसे युक्त होकर इन्द्र अपने बलपर विश्वास रखकर अर्थात् आत्मविश्वासके साथ अपने शत्रुओंपर आक्रमण करता है और उनके नगरोंको तोडता है । और इस प्रकार अनार्योंके बलका नाश करते हुए आर्योंके बल और शक्तिको बढाता है । राष्ट्रमें आर्योंका बल बढे और अनार्योंकी शक्ति घटे ॥ ३ ॥

" यह इन्द्र बलका पुत्र है, शत्रुओंका विनाशक है, सज्जनोंका रक्षक है " इस प्रकारके यशको यह इन्द्र अनन्तकालसे धारण करता आ रहा है । इसका यह यश कभी भी नष्ट नहीं होता । अपने इस यशकी रक्षा वह इन्द्र हर तरहसे करता है । इसी कारण उसका यश आजतक चला आ रहा है ॥ ४ ॥

इस इन्द्रने अपने स्वयं अर्जित पराक्रमसे गायें प्राप्त कीं, घोडे प्राप्त किए तथा अन्य भी अनेकों तरहके ऐश्वर्य प्राप्त किए । हे लोगो ! इसके इन पराक्रमोंकी ओर देखो और इस इन्द्रके पराक्रम पर श्रद्धा रखो । अपने उपास्य पर हमेशा श्रद्धा रखनी चाहिए, तथा जिस प्रकार उसने अपने पराक्रमसे यशका सम्पादन किया है, उसी प्रकार स्वयं भी प्रयत्न करके पराक्रमका सम्पादन करना चाहिए ॥ ५ ॥

यह इन्द्र ज्ञानियोंका बहुत आदर करता है और लुटेरोंके समान अपने पास ही धनको इकट्ठा करके रखनेवाले और यज्ञ आदि उत्तम कर्मोंमें कभी भी धनका उपयोग न करनेवाले असुरोंका शत्रु है । इसीलिए वह ऐसे असुरोंसे धन छीनकर उस धनको ज्ञानियोंमें बांट देता है । इस प्रकार वह अपने राज्यमें हमेशा ज्ञानियोंको बढावा देता है । इसीलिए सब लोग इसका सम्मान करते हैं । इसी प्रकार राजाको चाहिए कि वह अपने राज्यमें ज्ञानियोंको अच्छी प्रकार उन्नत करे, तथा सब जगह समाजवादकी उन्नति हो, [illegible] ॥ ६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११३६ तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत् ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥

११३७ शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

[१०४]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११३८ योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान् दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥

११३९ ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गु—र्नू चित् तान् त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन् ते न आ वक्षन् त्सुविताय वर्णम् ॥ २ ॥

अर्थ— [११३६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने (वज्रेण) वज्रसे (ससन्तं अहिं) सोते हुए अहिको (अबोधयः) जगाया, तथा (हृषितं) हर्षित हुए (त्वा) तुझे (पत्नीः) पत्नियोंने (अनु अमदन्) आनन्दित किया, तथा (वयः च विश्वे देवासः त्वा अनु अमदन्) गतिशील मरुतोंने तथा सभी देवोंने आनन्दित किया, (तत्) तब अपने (वीर्यं) बलको तूने (प्र इव चकर्थ) प्रकट किया ॥ ७ ॥

१ वीर्यं प्रचकर्थ— अपने बलको प्रकट किया ।

[११३७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने (शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रं अवधीः) शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्रको मारा, तब (शम्बरस्य पुरः वि) शम्बरासुरके नगरोंको भी तोडा। (तत्) इसलिए (मित्रः, वरुणः, आदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक (नः) हमें (मामहन्तां) बढावें ॥ ८ ॥

[१०४]

[११३८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हमने इस (योनिः) स्थानको (ते निषदे अकारि) तेरे बैठनेके लिए बनाया है, इसलिए (प्रपित्वे) यज्ञ कालकी प्राप्ति पर (दोषावस्तोः वहीयसः) रात दिन ढोनेवाले (अश्वान्) घोडोंको (अवसाय) खोलकर तथा उनके (वयः) बन्धनोंको (विमुच्य) खोलकर (तं) उस स्थान पर (स्वानः अर्वा न) हिनहिनाते हुए घोडेके समान (आ निषीद) आकर बैठ ॥ १ ॥

[११३९] (त्ये नरः) वे मनुष्य (ऊतये) संरक्षणके लिए (इन्द्रं आ उ गुः) इन्द्रके पास आये, इन्द्रने (तान्) उन्हें (नु चित्) शीघ्र ही (सद्यः) उसी समय (अध्वनः जगम्यात्) उत्तम मार्गों पर चलाया, (देवासः दासस्य मन्युं श्चम्नन्) देव गण असुरके क्रोधको नष्ट करें, तथा (ते) वे देव (सुविताय) यज्ञके लिए (वर्णं) वरणीय इन्द्रको (नः आ वक्षन्) हमारे पास ले आवें ॥ २ ॥

१ नरः ऊतये इन्द्रं आ गुः— मनुष्य संरक्षणके लिए इन्द्रके पास आते हैं ।

२ तान् नु चित् सद्यः अध्वनः जगम्यात्— उन्हें शीघ्र ही वह अच्छे मार्गसे चलाता है ।

भावार्थ— जब इन्द्रने सोते हुए अहि नामक असुर पर वज्रका प्रहार कर उसे जगाया अर्थात् उसका पराभव किया; तब सब देव और उनका पालन करनेवाली उनकी सब शक्तियां बहुत प्रसन्न हुईं और सबने इन्द्रकी स्तुति की ॥ ७ ॥

मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देवोंने जिस प्रकार शुष्ण आदि असुरोंको मारते और शम्बरासुर-के नगरोंको तोडते समय इन्द्रकी सहायता कर उसका उत्साह बढाया था, उसी प्रकार हमें भी शत्रुके पराभवके लिए बढावें और उत्साहित करें ॥ ८ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११३३ तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन् दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥
११३४ तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत् सो अविन्ददश्वान् त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५ ॥
११३५ भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम्
य आदृत्या परिपन्थीव शूरो ऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥

अर्थ— [११३३] (सूनुः) बलके पुत्र (वज्री) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रने (श्रवसे) यशके लिए (दस्युहत्याय उप प्रयन्) शत्रुको मारनेके लिए उसके समीप जाते हुए (यत् नाम दधे) जिस यशको धारण किया था, (तत् कीर्तेन्यं नाम) उस प्रशंसाके योग्य यशको (मघवा) इन्द्रने (ऊचुषे) स्तोताके लिए (इमा मानुषा युगानि) इन मनुष्योंके युगोंतक (बिभ्रत्) धारण किया ॥ ४ ॥

[११३४] (सः गाः अविन्दत्) उस इन्द्रने गायें प्राप्त कीं, (सः अश्वान् अविन्दत्) उसने घोडोंको प्राप्त किया, (सः ओषधीः) उसने औषधी, (सः अपः) उसने जल, (सः वनानि) उसने धनोंको प्राप्त किया, अतः हे मनुष्यो ! (अस्य इन्द्रस्य) उस इन्द्रके (इदं भूरि पुष्टं पश्यत) इस अत्यधिक बलको देखो, और इसके (वीर्याय) पराक्रम पर (श्रद् धत्तन) श्रद्धा करो ॥ ५ ॥

१ अस्य इन्द्रस्य इदं भूरि पुष्टं पश्यत, वीर्याय श्रद् धत्तन— इस इन्द्रके इस अत्यधिक बलको देखो और इसके बल पर श्रद्धा करो ।

[११३५] (यः शूरः) जो शूर इन्द्र (आदृत्य) ज्ञानियोंका आदर करके (परिपन्थी इव अयज्वनः) लुटेरेके समान अपने पास धन जोडकर रखनेवाले तथा यज्ञ न करनेवाले असुरका (वेदः) धन छीनकर उसे ज्ञानियोंमें (विभजन्) बांटता हुआ (एति) जाता है, उस (भूरिकर्मणे) बहुतसे उत्तम कर्मोंको करनेवाले, (वृषभाय वृष्णे) बलवान् दाता और (सत्यशुष्माय) सत्य बलवाले इन्द्रके लिए (सोमं सुनवाम) हम सोम निचोडें ॥ ६ ॥

१ यः शूरः आदृत्य अयज्वनः वेदः विभजन् एति, सोमं सुनवाम— जो शूरवीर ज्ञानियोंका आदर करके यज्ञ न करनेवालोंके धनको छीनकर ज्ञानियोंमें बांट देता है, उसका लोग सत्कार करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— इन्द्रके पास रहनेवाले हथियारोंमें कुछ हथियार ऐसे भी हैं, जो बिजलीसे चलते हैं अथवा बिजलीके समान तीक्ष्ण वार करते हैं, ऐसे आयुधोंसे युक्त होकर इन्द्र अपने बलपर विश्वास रखकर अर्थात् आत्मविश्वासके साथ अपने शत्रुओंपर आक्रमण करता है और उनके नगरोंको तोडता है । और इस प्रकार अनार्योंके बलका नाश करते हुए आर्योंके बल और शक्तिको बढाता है । राष्ट्रमें आर्योंका बल बढे और अनार्योंकी शक्ति घटे ॥ ३ ॥

" यह इन्द्र बलका पुत्र है, शत्रुओंका विनाशक है, सज्जनोंका रक्षक है " इस प्रकारके यशको यह इन्द्र अनन्तकालसे धारण करता आ रहा है । इसका यह यश कभी भी नष्ट नहीं होता । अपने इस यशकी रक्षा वह इन्द्र हर तरहसे करता है । इसी कारण उसका यश आजतक चला आ रहा है ॥ ४ ॥

इस इन्द्रने अपने स्वयं अर्जित पराक्रमसे गायें प्राप्त कीं, घोडे प्राप्त किए तथा अन्य भी अनेकों तरहके ऐश्वर्य प्राप्त किए । हे लोगो ! इसके इन पराक्रमोंकी ओर देखो और इस इन्द्रके पराक्रम पर श्रद्धा रखो । अपने उपास्य पर हमेशा श्रद्धा रखनी चाहिए, तथा जिस प्रकार उसने अपने पराक्रमसे यशका सम्पादन किया है, उसी प्रकार स्वयं भी प्रयत्न करके पराक्रमका सम्पादन करना चाहिए ॥ ५ ॥

यह इन्द्र ज्ञानियोंका बहुत आदर करता है और लुटेरोंके समान अपने पास ही धनको इकट्ठा करके रखनेवाले और यज्ञ आदि उत्तम कर्मोंमें कभी भी धनका उपयोग न करनेवाले असुरोंका शत्रु है । इसीलिए वह ऐसे असुरोंसे धन छीनकर उस धनको ज्ञानियोंमें बांट देता है । इस प्रकार वह अपने राज्यमें हमेशा ज्ञानियोंको बढावा देता है । इसीलिए सब लोग इसका सम्मान करते हैं । इसी प्रकार राजाको चाहिए कि वह अपने राज्यमें ज्ञानियोंको अच्छी प्रकार उन्नत करे, तथा सब जगह समाजवादकी उन्नति हो, पूंजीवाद न बढने पाए ॥ ६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११३६ तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत् ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥
११३७ शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

[१०४]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११३८ योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान् दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥
११३९ आ त्ये नर इन्द्रमूतये गु—र्नू चित् तान् त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्वम्नन् ते न आ वक्षन् त्सुविताय वर्णम् ॥ २ ॥

अर्थ— [११३६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने (वज्रेण) वज्रसे (ससन्तं अहिं) सोते हुए अहिको (अबोधयः) जगाया, तथा (हृषितं) हर्षित हुए (त्वा) तुझे (पत्नीः) पत्नियोंने (अनु अमदन्) आनन्दित किया, तथा (वयः च विश्वे देवासः त्वा अनु अमदन्) गतिशील मरुतोंने तथा सभी देवोंने आनन्दित किया, (तत्) तब अपने (वीर्यं) बलको तूने (प्र इव चकर्थ) प्रकट किया ॥ ७ ॥

१ वीर्यं प्रचकर्थ— अपने बलको प्रकट किया ।

[११३७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने (शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रं अवधीः) शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्रको मारा, तब (शम्बरस्य पुरः वि) शम्बरासुरके नगरोंको भी तोडा। (तत्) इसलिए (मित्रः, वरुणः, आदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक (नः) हमें (मामहन्तां) बढावें ॥ ८ ॥

[१०४]

[११३८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हमने इस (योनिः) स्थानको (ते निषदे अकारि) तेरे बैठनेके लिए बनाया है, इसलिए (प्रपित्वे) यज्ञ कालकी प्राप्ति पर (दोषावस्तोः वहीयसः) रात दिन ढोनेवाले (अश्वान्) घोडोंको (अवसाय) खोलकर तथा उनके (वयः) बन्धनोंको (विमुच्य) खोलकर (तं) उस स्थान पर (स्वानः अर्वा न) हिनहिनाते हुए घोडेके समान (आ निषीद) आकर बैठ ॥ १ ॥

[११३९] (त्ये नरः) वे मनुष्य (ऊतये) संरक्षणके लिए (इन्द्रं आ उ गुः) इन्द्रके पास आये, इन्द्रने (तान्) उन्हें (नु चित्) शीघ्र ही (सद्यः) उसी समय (अध्वनः जगम्यात्) उत्तम मार्गों पर चलाया, (देवासः दासस्य मन्युं श्वम्नन्) देव गण असुरके क्रोधको नष्ट करें, तथा (ते) वे देव (सुविताय) यज्ञके लिए (वर्णं) वरणीय इन्द्रको (नः आ वक्षन्) हमारे पास ले आवें ॥ २ ॥

१ नरः ऊतये इन्द्रं आ गुः— मनुष्य संरक्षणके लिए इन्द्रके पास आते हैं ।

२ तान् नु चित् सद्यः अध्वनः जगम्यात्— उन्हें शीघ्र ही वह अच्छे मार्गसे चलाता है ।

भावार्थ— जब इन्द्रने सोते हुए अहि नामक असुर पर वज्रका प्रहार कर उसे जगाया अर्थात् उसका पराभव किया; तब सब देव और उनका पालन करनेवाली उनकी सब शक्तियां बहुत प्रसन्न हुईं और सबने इन्द्रकी स्तुति की ॥ ७ ॥

मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देवोंने जिस प्रकार शुष्ण आदि असुरोंको मारते और शम्बरासुर-के नगरोंको तोडते समय इन्द्रकी सहायता कर उसका उत्साह बढाया था, उसी प्रकार हमें भी शत्रुके पराभवके लिए बढावें और उत्साहित करें ॥ ८ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११४० अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥ ३ ॥

११४१ युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वीभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ४ ॥

११४२ प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्पपी परा दाः ॥ ५ ॥

अर्थ— [११४०] (केतवेदाः) धनको जाननेवाला कुयव असुर (त्मना) स्वयं ही दूसरोंके धनका (अव भरते) अपहरण करता है, तथा (उदन्) उदय होते हुए वह (फेनं) झागयुक्त जलका (त्मना अव भरते) स्वयं अपहरण करता है, तब (कुयवस्य योषे) कुयवकी स्त्रियें (क्षीरेण स्नातः) उस पानीसे स्नान करती हैं (ते) वे दोनों स्त्रियें (शिफायाः प्रवणे) शिफा नदीके प्रवाहमें (हते स्यातां) डूबकर मर जायें ॥ ३ ॥

[११४१) (उपरस्य आयोः नाभिः) मेघमें रहनेवाले असुरका केन्द्र स्थान (युयोप) छुपा हुआ था, वह (पूर्वाभिः तिरते) जलोंसे बढता है, तथा (शूरः) शूरवीर होकर (राष्टि) तेजस्वी होता है उसे (पयः हिन्वानाः) जलको बहाती हुई (अञ्जसी, कुलिशी, वीरपत्नी) अञ्जसी, कुलिशी, वीर पत्नी नदियां (उदभिः भरन्ते) जलोंसे भर देती हैं ॥ ४ ॥

[११४२] हे इन्द्र ! (यत्) क्योंकि हमने (स्या नीथा अदर्शि) उस मार्गको देख लिया है, जो (दस्योः ओकः) दस्युके घरको (जानती सदनं न) जैसे जानती हुई गाय अपने स्थानको जाती है, उसी प्रकार (अच्छ गात्) सीधा जाता है, (अध स्म) इसलिए हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! असुरोंके (चर्कृतात्) उपद्रवसे (नः इत्) हमारी रक्षा कर, (निष्पपी मघा इव) जैसे स्त्री-व्यसनी पुरुष धनोंको फेंकता है, उस प्रकार (नः मा परा दाः) हमें दूर मत फेंक ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिस समय यज्ञका समय होता है और जगह जगह यज्ञ शुरु होते हैं, उस समय इन्द्र अपने रथसे उतर कर यज्ञमें आकर बैठता है, तब मनुष्य इन्द्रके पास आकर रक्षा करनेकी प्रार्थना करते हैं। इसके उत्तरमें इन्द्र उन मनुष्यों-को उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है। इसका आशय यह है कि जब मनुष्य उत्तम मार्गसे चलता है, देवगण स्वयं ही उसकी हर तरहसे रक्षा करते हैं। फिर आत्मरक्षाके लिए उनकी प्रार्थना करनेकी जरूरत नहीं रहती। उसके कर्मोंसे आकर्षित होकर इन्द्र आदि देव उसकी रक्षाके लिए आते हैं और वे देवगण उस मनुष्यके शत्रुओंको उत्साहहीन कर देते हैं ॥१-२॥

असुर या शत्रुगण दूसरोंके धनोंका अपहरण करते हैं। तथा दूसरोंके राज्यमें जानेवाली नदियोंको बांध आदि बांध कर रोक लेते हैं। इस प्रकार झागसे भरे हुए पानीका अपहरण करते हैं। और तब शत्रुकी स्त्रियां उस पानीमें खुश होकर नहातीं हैं। पर जब शत्रुका यह मद बहुत अधिक हो जाता है, तब सारे शत्रुगणका विनाश होता है और उनकी स्त्रियां भी उन्हीं नदियोंमें डूब जाती हैं ॥ ३-४ ॥

हे इन्द्र ! जैसे एक गाय अपने मार्गको जानती हुई अपने निवास स्थान पर पहुंच जाती है, उसी प्रकार हमने दस्युके घरको सीधा जानेवाला मार्ग जान लिया, अतः अब तू असुरोंके स्थान पर जाकर उन्हें नष्ट कर और उन असुरोंके कारण बार बार होनेवाले कष्टोंसे हमारी रक्षा कर। जिस प्रकार एक स्त्रीव्यसनी मनमाने रूपसे धन लुटाता है, उसी प्रकार तू हमें कभी भी अपनेसे दूर मत कर अपितु हमें सदा अपनी ही रक्षामें रख ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११४३ स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्व—नागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥

११४४ अद्या मन्ये श्रत् ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योना—विन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वयः आसुतिं दाः ॥ ७ ॥

११४५ मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भे—न्मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि ॥ ८ ॥

११४६ अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहु—रयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ ९ ॥

अर्थ— [११४३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (सूर्ये) सूर्य प्रकाशमें (आ भज) संयुक्त कर (सः) वह तू हमें (अप्सु) जलोंसे संयुक्त कर, तथा (जीवशंसे) जीवोंके द्वारा प्रशंसित (अनागाः त्वे) पापरहित कार्यमें संयुक्त कर (नः अन्तरां भुजं) अन्दर स्थित पालनके योग्य प्रजाकी (मा रीरिषः) हिंसा मत कर, क्योंकि हमने (ते महते इन्द्रियाय) तेरे महान् बलपर (श्रत् हितं) श्रद्धा की है ॥ ६ ॥

१ नः जीवशंसे अनागास्त्वे— हे इन्द्र ! हमें जीवोंके द्वारा प्रशंसित पापरहित कार्यसे संयुक्त कर ।

[११४४] हे (वृषा पुरुहूत इन्द्र) बलवान् और बहुतों द्वारा प्रार्थना जिसकी होती है ऐसे इन्द्र ! मैं (अद्य) अब तेरा (मन्ये) सम्मान करता हूँ, (ते अस्मै श्रत् आधायि) तेरे इस बलके लिए मैं श्रद्धा रखता हूँ, हमें (महते धनाय चोदय) महान् ऐश्वर्यके लिए प्रेरित कर, (नः) हमें (अ-कृते यौनौ) धन शून्य घरमें (मा) स्थापित मत कर, तथा (क्षुध्यद्भ्यः) भूखोंको (वयः आसुतिं दाः) अन्न और पीनेकी सामग्री दे ॥ ७ ॥

१ अ-कृते योनौ मा— हे इन्द्र ! हमें धन शून्य घरमें स्थापित मत कर ।

२ महते धनाय चोदय— बहुत धन प्राप्त करनेके लिए हमें प्रेरित कर ।

[११४५] हे (मघवन् शक्र इन्द्र) ऐश्वर्यवान् सामर्थ्यवान् इन्द्र ! (नः मा वधीः) हमें मत मार, (मा परा दाः) हमारा त्याग न कर (नः प्रिया भोजनानि मा प्रमोषीः) हमारे प्रिय भोजनोंका नाश न कर, (नः आण्डाः मा निर्भेः) हमारे गर्भोंको विनष्ट मत कर, तथा (न सह-जानुषाणि पात्रा मा भेत्) घुटनोंसे चलनेवाले हमारे सन्तानोंका नाश न कर ॥ ८ ॥

[११४६] हे इन्द्र ! (त्वा) तुझे लोग (सोमकामं आहुः) सोमका इच्छुक कहते हैं, अतः तू (अर्वाङ् एहि) सामने आ । (अयं सुतः) यह सोम तेरे लिए निचोडा गया है, (मदाय) आनन्दके लिए (तस्य पिब) उसको पी, (ऊरुव्यचा) बहुत विशाल होकर (जठरे) अपने पेटको (आ वृषस्व) सोमसे भर ले, तथा (हूयमानः) बुलाया हुआ तू (नः) हमारी प्रार्थनाओंको (पिता इव) पिताके समान (शृणुहि) सुन ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमें सूर्यप्रकाश एवं जलसे संयुक्त कर। हम इन दोनों पदार्थोंसे कभी दूर न रहें। हम सभीके द्वारा प्रशंसित पापरहित मार्गमें हमेशा चलें। हमारे वर्तनसे प्रसन्न होकर तू हमारी और हमारी प्रजाओंकी रक्षा कर। हमें तेरे बलमें पूरी श्रद्धा है, हमने अपना सर्वस्व तुझे समर्पित कर दिया है अतः हमारी पूरी तरहसे रक्षा कर ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हमें तेरे बल पर पूरी पूरी श्रद्धा है। हमें पूरा विश्वास है कि तू हमारी हर तरहसे रक्षा करेगा। इसीलिए मैं तेरा सम्मान करता हूँ। तू हमें महान् ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिए प्रेरित कर। हमें कभी भी ऐसे स्थानमें मत रख, जो धनसे शून्य हो। हम सदा धन सम्पन्न रहें और धन सम्पन्न होकर भूखे प्यासे लोगोंकी सेवा करें ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तू सोम पीनेका बडा अभिलाषी है। इसीलिए हम तेरे लिए सोम तैयार करते हैं। तू सोम पीकर हमपर प्रसन्न हो, तथा हमारी प्रजा, गर्भ एवं घुटनोंसे चलनेवाली सन्तानोंकी रक्षा कर साथ ही हमारा भी संरक्षण कर ॥ ८-९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[१०५]

(ऋषिः- त्रित आप्त्यः, कुत्स आङ्गिरसो वा । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- पंक्तिः; ८ यवमध्या महाबृहती, १९ त्रिष्टुप् ।)

११४७ चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १ ॥

११४८ अर्थमिद् वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ २ ॥

११४९ मो षु देवा अदः स्व१—रव पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ३ ॥

---

[१०५]

अर्थ—[११४७] (अप्सु अन्तः चन्द्रमाः) अन्तरिक्षमें चन्द्रमा दौडता है (दिवि सुपर्णः आ धावते) द्युलोकमें सूर्य दौडता है, (हिरण्यनेमयः विद्युतः) सुवर्णके समान चमकनेवाली बिजलियां (वः पदं न विन्दन्ति) तुम्हारे स्थानको नहीं जानतीं । (रोदसी) हे द्युलोक और भूलोक (मे अस्य वित्तं) मेरी प्रार्थनाका भाव जानो ॥ १ ॥

[११४८] (अर्थिनः अर्थं इत् वै ऊ) इच्छा करनेवाले निस्सन्देह अपने प्राप्तव्यको प्राप्त करते हैं, (जाया पतिं आ युवते) पत्नी पतिके साथ मिलती है, तब वे दोनों पतिपत्नी मिलकर (वृष्ण्यं पयः तुञ्जाते) बलवान् वीर्यको प्रेरित करते हैं, और वह पत्नी (रसं परिदाय) रसरूपी वीर्यको प्राप्त करके (दुहे) पुत्र प्रसव करती है । (रोदसी) हे द्युलोक और भूलोक ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थनाके आशयको जानो ॥ २ ॥

१ अर्थिनः अर्थं इत्— इच्छा करनेवाले अपने प्राप्तव्यको निस्सन्देह प्राप्त कर ही लेते हैं ।

[११४९] (देवाः) हे देवो ! (स्वः अदः दिवः परि) हमारा तेज द्युलोकके ऊपरसे (मो सु अव पादि) कभी न गिरे । (शं-भुवः सोम्यस्य शूने) आनन्द देनेवाले सोमसे रहित स्थानमें हम (कदाचन मा भूम) कभी भी न रहें (रोदसी) हे द्युलोक और भूलोक ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थनाके आशयको जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ— अन्तरिक्षमें चन्द्रमा और द्युलोकमें सूर्य विचरण करते हैं। पर बीचमें चमकनेवाली बिजलियोंका स्थान कोई नहीं जानता । यद्यपि सूर्य और चन्द्र दोनों गतिमान् हैं, तथापि इनका स्थान ज्ञानी जानते हैं, पर विद्युत् कहांसे चमकेगी, यह कोई नहीं जानता । यह सदा गुप्त रहती और एकदम अचानक चमक उठती है । इस विश्वमें सर्वत्र अग्नि व्याप्त है, पर वह सूर्य, चन्द्रमा अग्निके रूपोंमें प्रकट है और विद्युत्के रूपमें गुप्त है । मैं इसी तेजकी उपासना करता हूँ, आकाश और पृथ्वी रूप प्रभु मेरी इस प्रार्थनाके आशयको जानें ॥ १ ॥

इच्छा ही मानवमें एक मुख्य प्रेरकशक्ति है । यदि मानवमें किसी चीजको पानेकी बलवती हो, तो वह उसे प्राप्त कर ही लेता है । इच्छाशक्तिसे ही उन्नति होनेकी संभावना है । प्रबल इच्छा होनेसे तदनुकूल प्रयत्न होंगे और पुरुषार्थ तथा प्रयत्न योग्य रीतिसे होनेसे सिद्धि भी प्राप्त होगी । उदाहरणार्थ- पत्नी पति दोनों एक दूसरेके साथ मिलनेकी इच्छा करते हैं, फिर मिलते भी हैं, तब बलवर्धक वीर्यको प्रेरित करते हैं, तब पत्नी पुत्रको उत्पन्न करती है । यह गृहस्थाश्रमका कार्य पतिपत्नीकी प्रबल इच्छाशक्तिके कारण ही होता है । इसलिए मनमें सदा शुभ इच्छा ही धारण करनी चाहिए ॥ २ ॥

हमारा तेज स्वर्गसे नीचे न गिरे अर्थात् हमारा तेज सदा ऊंचा रहे । उच्च मार्गसे जाकर उच्च स्थान पर ही विराजे । हम उन्नत हों कदापि अवनत न हों तथा सुख उत्पन्न करनेके साधन जहां न हों, वहां हम कदापि न रहें । अपने पास सब तरहके सुखके साधन जमा करके हम आनंद प्रसन्न रहें ॥ ३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११५० यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद् दूतो वि वोचति ।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद् बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ४ ॥

११५१ अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद् वः ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ५ ॥

११५२ कद् वः ऋतस्य धर्णसि कद् वरुणस्य चक्षणम् ।
कदर्यम्णो महस्पथा तिं क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ६ ॥

अर्थ— [११५०] (अवमं यज्ञं पृच्छामि) मैं समीपके यज्ञसे प्रश्न पूछता हूँ (तत् सः दूतः विवोचति) उसका उत्तर वह दूत अग्नि देगा ही, (पूर्व्यं ऋतं क्व गतं) तुम्हारा वह प्राचीनकालसे चला आया सरल भाव कहां गया ? (कः नूतनः तत् बिभर्ति) किस नवीनने उसे धारण किया है ? (रोदसी) हे पृथ्वी और द्युलोक ! (मे अस्य वित्त) मेरी इस जिज्ञासाको समझो ॥ ४ ॥

[११५१] हे (देवाः) देवो ! (ये अमी त्रिषु स्थन) जो ये देव तीनों स्थानोंमें हैं (दिवः आ रोचने) वे द्युलोकके प्रकाशमें रहते हैं। (वः ऋतं कत्) आपकी सरलता कहां है ? (अनृतं कत्) आपका असत् कहां है ? (वः प्रत्ना आहुतिः क्व) आपको दी हुई पुरातन आहुति कहां हैं ? (रोदसी) हे द्युलोक एवं पृथ्वीलोक ! (मे अस्यं वित्तं) मेरी इस जिज्ञासाको समझो ॥ ५ ॥

[११५२] (वः ऋतस्य धर्णसि कत्) आपका सत्यका धारण करना कहां है ? (वरुणस्य चक्षणं कत्) वरुण-की अमरदृष्टि कहां है ? (महः अर्यम्णः पथा कत्) बडे श्रेष्ठ अर्यमाका मार्ग कौनसा है (दूढ्यः अति क्रामेम) जिससे हम दुष्टोंका अतिक्रमण कर सकें ? (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तम्) इस हमारी जिज्ञासाको समझो ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो कुछ पूछना हो समीपस्थ ज्ञानी पुरुषसे ही पूछना चाहिए, क्योंकि शंकासमाधान ज्ञानी ही उत्तम शक्तिसे कर सकता है, वही प्रश्नोंका उत्तर उत्तम रीतिसे दे सकता है। प्राचीन वृद्ध किसतरहका आचरण करते थे और आजकलके तरुण किस तरहका आचरण कर रहे हैं, यह विचारणीय है। प्राचीन वृद्धोंके आचरणमें कितनी सरलता थी और आजके युवकोंमें कितनी सरलता है, यह भी द्रष्टव्य है। प्राचीन लोगोंकी सरलता, सचाई, सादगी हमारे व्यवहारमें भी आनी चाहिए। ये सद्गुण ही सबके मार्गदर्शक हों ॥ ४ ॥

तुम्हारा सत्य मार्ग और असत्य मार्ग कौन कौनसा है, यह विचारणीय है। जो लोग तीनों स्थानोंमें रहते हैं, वे द्युलोकके पवित्र प्रकाशमें रह सकते हैं। यदि वे सन्मार्गसे चलेंगे तो अवश्य ही वे पवित्र प्रकाशमें भी परमोच्च स्थानमें रहेंगे। प्रत्येक मनुष्यको ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए कि उसकी योग्यता उच्च हो। मनुष्यने भूतकालमें जो भी कुछ किया हो, उस पर विचार अवश्य करना चाहिए। अर्थात् भूतकालमें जो भी किया उससे जनताका हित हुआ या अहित, इसका विचार मनुष्य अवश्य करे। इसप्रकार पूर्वके आचरणके परिणाम पर विचार करके ही आगेके आचरण करने चाहिए ॥ ५ ॥

दुष्ट बुद्धिवालोंका अतिक्रमण करके हम सुबुद्धिवालोंकी संगतिमें रहें। हम दुष्टोंका दमन करते हुए आगे बढें। दुष्ट मानव सब समाजको कष्ट देते हैं, अतः उनका दमन करना चाहिए। वे समाजमें उपद्रव न कर सकें, ऐसी स्थितिमें उन्हें रखना चाहिए। सत्यका समर्थ आधार, वरिष्ठ द्रष्टाका निरीक्षण और उत्तम आर्यमनवालेके मार्गसे गमन ये तीन साधन हैं जिनसे दुष्टोंको दूर करके सज्जनोंका मार्ग निरुपद्रवी हो। अपना पक्ष सत्यके आश्रय पर स्थित हो। कार्यकर्ताओंपर भद्र और श्रेष्ठ पुरुषका निरीक्षण हो। मनुष्य सदा आर्य मार्गसे चले। इन तीन साधनोंसे मनुष्यकी उन्नति हो सकती है ॥ ६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११५३ अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ७ ॥

११५४ सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८॥

११५५ अमी ये सप्त रश्मय—स्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद् वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥

११५६ अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतु—र्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १० ॥

अर्थ— [११५३] (पुरा सुते) पुरातन समयमें सोमयागमें (यः अहं) जिस मैंने (कानि चित् वदामि) कई सूक्त पढे थे (सः अहं अस्मि) वही मैं हूँ (तं मा आध्यः व्यन्ति) उसी मुझको मानसिक व्यथाएं उसी प्रकार खा रहीं हैं (तृष्णजं मृगं वृकः न) जैसे तृषित मृगको भेडिया खाता है। (रोदसी !) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तम्) मेरी इन व्यथाओंको समझो और दूर करो ॥ ७ ॥

[११५४] (पर्शवः मा अभितः) पसलियाँ मुझे चारों ओरसे (सपत्नीः इव संतपन्ति) पत्नियोंके समान संतप्त करती हैं (शतक्रतो) हे शतक्रतु (मूषः शिश्ना न) जिस तरह चूहे कांजी लगे तन्तुओंको खाते हैं, वैसीही (ते स्तोतारं मा) तेरी उपासना करनेवाले मुझे (आध्यः वि अदन्ति) ये व्यथाएँ खा रही हैं (रोदसी) हे द्यावापृथिवी (मे अस्य वित्तं) मेरी इन व्यथाओंको समझो और दूर करो ॥ ८ ॥

[१२५५] (ये अमी सप्त रश्मयः) जो ये सात किरणें हैं (तत्र मे नाभिः आतता) वहांतक मेरा घर फैला हुआ है (आप्त्यः त्रितः तत् वेद) आप्त्य त्रितको इसका ज्ञान है। (सः जामित्वाय रेभति) इसलिये वह प्रेममय बन्धुभावके लिये प्रार्थना करता है (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ ९॥

[११५६] (अमी ये पञ्च उक्षणः) ये वे पांच प्रबल बैल हैं (महः दिवः मध्ये तस्थुः) जो बडे द्युलोकके मध्यमें रहते हैं, (देवत्रा नु प्रवाच्यं) देवोंके संबंधके स्तोत्र पढते ही (सध्रीचीनाः नि वावृतुः) वे साथ ही निवृत्त हुए हैं (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १० ॥

भावार्थ— मनुष्य भले ही कितना ही बडा विद्वान् हो, तथापि प्यासे हिरनको जैसे भेडिया कष्ट देता है, उसी प्रकार मानसिक व्यथायें उसे कष्ट देती ही हैं। विद्वत्ता प्राप्त करने पर भी उसका मन शान्त नहीं होता, भोगतृष्णा उसे सताती है, क्रोध उसे अशान्त करता है ॥ ७॥

स्तुति, प्रार्थना, उपासना और भजन करनेवालेको भी मानसिक शान्ति नहीं मिलती। उसे भी मनोव्यथायें उसी तरह खाती हैं, जिस तरह कांजी लगे हुए वस्त्रको चूहा खा जाता है। जिस तरह धागे पर कांजी लगानेसे उसे चूहे काट डालते हैं, उसी प्रकार मनुष्य पर प्रबल भोगेच्छाका लेप लगनेसे उसे कामक्रोधादि चूहे काटने लगते हैं। अथवा जैसी अनेक सौतें एक पतिको कष्ट देती हैं, उसी प्रकार अनेकों मनोव्यथायें मनुष्यको तंग करती हैं ॥ ८ ॥

जहां तक सूर्यकी किरणें फैलती हैं, वहां तक मनुष्यका कुटुम्ब हो और सारा विश्व मनुष्यका कुटुम्ब हो। आप्त पुरुषोंकी यही इच्छा होती है कि सर्वत्र बन्धुभावकी स्थापना हो, इसी भावनाका वह सर्वत्र उपदेश भी करता है। सभी मनुष्य संपूर्ण बन्धुभाव स्थापित करनेका प्रयत्न करें। विश्वमें सब जगह प्रेमका प्रसार करें ॥ ९ ॥

द्युलोकमें पांच बैल हैं। शरीरमें सिर द्युलोक है। इसमें आंख, नाक, कान, मुख और रसना ये पांच बहुत शक्तिशाली इन्द्रियें हैं। इन्हींको पंचवृषभ, पंचप्राण, पंच अग्नि आदि कहा जाता है। देवताओंकी उपासना प्रारंभ होते ही ये पांचों एकदम विषयोंसे निवृत्त होते हैं। मनके साथ साथ ये इन्द्रियें भी उपासनामें तल्लीन हो जाती हैं ॥ १० ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११५७ सुपर्णा एत आसते मध्ये आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ११ ॥
११५८ नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १२ ॥
११५९ अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान् यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १३ ॥
११६० सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १४ ॥
११६१ ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १५ ॥

अर्थ— [११५७] (एते सुपर्णाः) ये सुन्दर पक्षी (आरोधने दिवः मध्ये) द्युलोकके मध्यभागमें (आसते) रहते हैं, (ते यह्वतीः अपः तरन्तं वृकं पथः) वे विस्तृत जलमें तैरनेवाले भेडियेको मार्गसे (सेधन्ति) हटा देते हैं (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ ११ ॥

[११५८] (देवासः) हे देवो ! (नव्यं उक्थ्यं सुप्रवाचनं तत् हितं) यह नवीन गाने योग्य उत्कृष्ट स्तोत्र हितकारक है (सिन्धवः ऋतं अर्षन्ति) नदियाँ जलको ला रही हैं (सूर्यः सत्यं तातान) और सूर्यने यज्ञ फैलाया है (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १२ ॥

[११५९] (अग्ने) हे अग्ने ! (तव त्यत् उक्थ्यं आप्यं) तेरा वह प्रशंसनीय बन्धुभाव (देवेषु अस्ति) देवोंके साथ है (सः विदुष्टरः) वह तू विशेष ज्ञानी (नः सत्तः) हमारे यज्ञमें (मनुष्वत्) मनुष्यके समान बैठकर (देवान् आ यक्षि) देवोंको यज्ञमें ला। (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १३ ॥

[११६०] (मनुष्वत् सत्तः होता) मनुष्यके समान यज्ञमें बैठनेवाला (विदुष्टरः देवः) ज्ञानी होता (देवेषु मेधिरः अग्निः) और देवोंमें अधिक बुद्धिमान् यह अग्निदेव (देवान् अच्छ हव्या सुषूदति) देवोंके प्रति हव्य पदार्थोंको पहुंचाता है (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १४ ॥

[११६१] (वरुणः ब्रह्म कृणोति) वरुण स्तोत्र करता है (तं गातुविदं ईमहे) उस मार्गदर्शक प्रभुकी हम प्रशंसा करते हैं (हृदा मतिं वि ऊर्णोति) हृदयसे बुद्धिको वही खोल देता है (नव्यः ऋतं जायताम्) इससे नवीन सत्य प्रकट होता है (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १४ ॥

भावार्थ— उत्तम पंखवाले पक्षी द्युलोकमें स्थित हैं, वे पक्षी वेगसे तैरनेवाले प्रवाहोंके मार्गमें आनेवाले भेडियेको दूर कर देते हैं। यहां ये पक्षी सूर्य किरणें हैं और भेडिया अन्धकार है। ये सूर्यकिरण अन्धकारको दूर करके प्रकाशका मार्ग खोल देते हैं। अज्ञानरूप अन्धकारको दूर करके प्रकाशके मार्गको प्राप्त करना दुःखसे मुक्त होनेका साधन है ॥ ११ ॥

नवीन स्तोत्र बार बार पढकर मनन करने योग्य और हितकारक है। जिस तरह नदियोंमें जल बहता है और जैसे सूर्यप्रकाश फैलता है, उसी प्रकार विद्यारूपी जल शान्ति और प्रकाश देकर सबका हित करता है ॥ १२ ॥

दैवी सम्पत्तिवाले विबुधोंके साथ जो बंधुभाव होता है वही प्रशंसनीय होता है अर्थात् दुष्टोंके साथ अपना सम्बन्ध रखना उचित नहीं है। मनुष्यको चाहिए कि वह अत्यन्त ज्ञानी बनकर देवोंका-विद्वानोंका अपने घरमें सम्मान करे ॥ १३ ॥

अत्यन्त ज्ञानी बुद्धिमान् अग्नि जैसा तेजस्वी पुरुष दिव्य विबुधोंका अन्नपानादि द्वारा सत्कार करता है ॥ १४ ॥

वरिष्ठ ज्ञानी ही उत्तम काव्य बनाता है। बिना ज्ञानके मार्गदर्शन असंभव है। अतः जो मार्गदर्शन कर सकता है, उसीको प्राप्त करना चाहिए। उसके मार्गदर्शनसे उन्नतिको प्राप्त करना चाहिए। वह ज्ञानी अपने हृदयसे सद्बुद्धिको प्रकट करके जनताका मार्गदर्शन करता है। नयी रीतिसे सत्यका मार्ग बताता है। इसीलिए सज्जनोंकी संगतिमें ही रहना चाहिए ॥ १५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११६२ असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १६ ॥

११६३ त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १७ ॥

११६४ अरुणो मा सकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १८ ॥

११६५ एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तो ऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥

अर्थ— [११६२] (यः असौ आदित्यः पन्थाः) यह जो आदित्यरूपी मार्ग (दिवि प्रवाच्यं कृतः) द्युलोकमें स्तुतिके लिये योग्य किया गया है (देवाः) हे देवो ! (सः न अतिक्रमे) उसका अतिक्रमण नहीं करना चाहिये। (मर्तासः) हे मानवो ! (तत् न पश्यथ) वह मार्ग तुम देख भी नहीं सकते (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १६ ॥

१ आदित्यः पन्थाः न अतिक्रमे— आदित्य मार्गका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

२ मर्तासः तत् न पश्यथ— साधारण मनुष्य उस मार्गको देख भी नहीं सकते।

[११६३] (कूपे अवहितः त्रितः) कूएमें पडे हुए त्रितने (ऊतये देवान् हवते) अपनी सुरक्षाके लिये देवोंकी प्रार्थना की। (बृहस्पतिः तत् शुश्राव) बृहस्पतिने वह सुनी (अंहूरणात् उरु कृण्वन्) और कष्टोंसे छूटनेके लिये विस्तृत मार्ग बना दिया। (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तम्) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १७ ॥

[११६४] (अरुणः वृकः) लाल रंगके भेडियेने (मा सकृत् पथा यन्तं ददर्श हि) एक बार मुझे मार्गसे जाते हुए देखा। (पृष्ट्यामयी तष्टा इव) पीठमें दर्द होनेवाले बढईके समान (निचाय्य उत् जिहीते) उठकर वह मुझे चलाने लगा। (रोदसी) हे भूलोक और द्युलोको ! (मे अस्य वित्तम्) यह मेरी प्रार्थना जान लो ॥ १८ ॥

[११६५] (एना आंगूषेण) इस स्तोत्रसे (इन्द्रवन्तः सर्ववीराः) इन्द्रके सामर्थ्यसे युक्त होकर (वयं वृजने अभि ष्याम) हम सब वीर बनकर युद्धमें शत्रुको परास्त करें। (तत् नः) इस मेरी इच्छाका (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत् द्यौः मामहन्ताम्) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ सब देव अनुमोदन करें ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह जो सूर्यका प्रकाश मार्ग द्युलोकमें प्रशंसित हुआ है, उसका उल्लंघन करना योग्य नहीं है। इस सूर्यके प्रकाश मार्गको सिर्फ ज्ञानी ही देख सकते हैं, सर्व साधारण मनुष्य इसे देख नहीं सकते। इस मार्गकी बहुत स्तुति गाई गई है। मनुष्योंको इसी सूर्य मार्गसे जाना चाहिए। इस मार्गसे जाकर वह सभी तरहके बंधनोंसे मुक्त हो जाता है ॥१६॥

कूपमें पडे हुए त्रितने अपने उद्धारके लिए देवोंकी प्रार्थना की। बृहस्पतिने उसकी पुकार सुनी और उसे अधोगतिसे ऊपर उठाकर उन्नत किया। दुःखके अन्दर पडा हुआ मनुष्य दुःखसे मुक्त होनेके लिए ज्ञानियोंकी प्रार्थना करता है। तब ज्ञानी उसके आर्तनादको सुनकर उसके पास जाते हैं और उसका उद्धार करते हैं ॥ १७ ॥

लाल रंगका उदय होता हुआ सूर्य सब लोगोंका निरीक्षण करता चलता है। उदय होनेके साथ ही वह सबको अपने अपने कामोंमें प्रेरित करता है साथ ही यह भी देखता है कि मनुष्य अपने ठीक ठीक मार्ग पर चल रहे हैं या नहीं। तब वह अधोगतिकी ओर जानेवालोंका उद्धार करता है, उन्हें उन्नत करता है और दुःखसे मुक्त करता है ॥ १८ ॥

इस सूक्तके मननसे हम सब वीर बन कर युद्धमें सब शत्रुओंको परास्त करें और विजयी बनें। मित्र, वरुण आदि सब देव हमारे इस प्रस्तावका अनुमोदन करें और हमारी सहायता करें ॥ १९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[१०६]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- जगती; ७ त्रिष्टुप् ।)

११६६ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ १ ॥

११६७ त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ २ ॥

११६८ अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ३ ॥

११६९ नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ४ ॥

---

[१०६]

अर्थ— [११६६] (ऊतये इन्द्रं, मित्रं, वरुणं, अग्निं) हम सब अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि (मारुतं शर्धः) मरुतोंके संघ, (अदितिं हवामहे) तथा अदितिकी प्रार्थना करते हैं (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे, (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ १ ॥

[११६७] (आदित्याः देवाः) हे आदित्य देवो ! (ते) वे आप सब यहां हमारे (सर्वतातये) यज्ञके लिये (आ गत) आओ (वृत्रतूर्येषु) असुरोंके नाश करनेके कार्योंमें (शंभुवः भूत) सुख देनेवाले बनो। (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ २ ॥

[११६८] (सुप्रवाचनाः पितरः) उत्तम प्रशंसाके योग्य सब पितर (नः अवन्तु) हमारी सुरक्षा करें (उत देवपुत्रे) और देवकन्याएँ (ऋतावृधा देवी) सत्यका संवर्धन करनेवाली देवियाँ हम सबकी सुरक्षा करें। (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ ३ ॥

[११६९] (नराशंसं वाजिनं) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित बलिष्ठ वीरका (वाजयन् इह) बल हम यहां बढाते (क्षयद्वीरं) जिसके पास वीर रहते हैं (पूषणं सुम्नैः ईमहे) ऐसे पूषाकी शुभ मनोभावनाओंसे हम प्रशंसा करते हैं। (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— हम अपनी सुरक्षाके लिए इन्द्र आदि देवोंकी प्रार्थना करते हैं। ये सब हमारे यज्ञमें आवें और असुरोंके नाश करनेके कार्यमें हमारी सहायता करें। तथा जिस प्रकार कठिन रास्तोंसे रथको सम्हालकर चलाते हैं, उसी प्रकार हमें सब सकटोंसे पार करायें ॥ १-२ ॥

हम बलिष्ठ वीरकी स्तुति करते हैं, और सदा वीरोंको अपने पास रखनेवाले पूषाकी भी हम प्रार्थना करते हैं, वे सब देवता, देवकन्या और अन्य देवियां मिलकर हमारी रक्षा करें ॥ ३-४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११७० बृहस्पते सदमित्नः सुगं कृधि शं योर्यत् ते मनुर्हितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ५ ॥

११७१ इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ६ ॥

११७२ देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ७ ॥

[१०७]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११७३ यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्वृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ १ ॥

अर्थ— [११७०] (बृहस्पते) हे बृहस्पते ! (सदं इत् नः सुगं कृधि) सदा ही हमारे मार्ग सुगम कर (यत् ते मनुः हितं) जो तेरे पास मानवोंका हित करनेवाला (तत् शं योः ईमहे) सच्चा सुख और दुःख दूर करनेका साधन है, वही हम चाहते हैं। (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे, (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथकी संभालकर चलाते हैं, (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ ५ ॥

[११७१] (काटे निबाळ्हः कुत्सः ऋषिः) कुवेंमें पडा हुआ कुत्स ऋषि (ऊतये) अपनी सुरक्षाके लिये (वृत्रहणं शचीपतिं इन्द्रं अह्वत्) शत्रुनाशक तथा शक्तिशाली इन्द्रकी प्रार्थना करता रहा (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान देनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्माद् अंहसः) सब संकटोंसे (दुर्गात् रथं न) जैसे कठिन मार्गसे रथ चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) वैसे हम सबको पार करो ॥ ६ ॥

[११७२] (देवी अदितिः) देवी अदिति (देवैः) देवोंके साथ (नः नि पातु) हमारी सुरक्षा करे (त्राता देवः) संरक्षक देव (अप्रयुच्छन्) दुर्लक्ष्य न करता हुआ (त्रायतां) हमारी सुरक्षा करे (नः) हमारा (तत्) यह ध्येय (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्यौ आदि देव सिद्ध करनेमें सहायक हों ॥ ७ ॥

[१०७]

[११७३] (यज्ञः देवानां सुम्नं प्रति एति) यज्ञ देवोंकी शुभबुद्धि प्राप्त करता है (आदित्यासः) हे आदित्यो ! (मृळयन्तः भवत) तुम हमें सुख देनेवाले बनो। (वः सुमतिः अर्वाची आ ववृत्यात्) आपकी शुभ बुद्धि हमारे पास आवे (या अंहोः चित् वरिवो-वित्तरा असत्) जो संकटोंसे बचाती और उत्तम धन देती है ॥ १ ॥

भावार्थ— संकटोंके गर्तमें गिरे हुए कुत्सने सुरक्षाके लिए शक्तिशाली इन्द्रकी प्रार्थना की, तब इन्द्रने आकर उसकी सहायता की। बृहस्पति भी मानवोंका सच्चा हित करनेवाला है तथा सच्चा सुख देनेवाला है, वह हमारी सहायता करे ॥५-६॥

देवी और अखण्डनीय देवी हमारी रक्षा करे। तथा अन्य देव भी दुर्लक्ष्य न करते हुए हमारी सहायता करें, इसके साथ ही वरुण, अदिति आदि देव भी हमारी हरतरहसे सहायता करें ॥ ७ ॥

यज्ञसे सुबुद्धि प्राप्त होती है। यज्ञ अर्थात् सज्जनोंके साथ संगति करनेसे बुद्धि पवित्र एवं शुद्ध होती है। सुबुद्धिसे उत्तम सुख मिलता है। वह संकटोंसे बचाती है और उत्तम यश देती है ॥ १ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११७४ उप नो देवा अवसा गम—न्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
इन्द्रं इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भि—रादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥ २ ॥

११७५ तन्न इन्द्रस्तद् वरुणस्तदग्नि—स्तदर्यमा तत् सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥

[१०८]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११७६ य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वा—मभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसा—था सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १ ॥

११७७ यावदिदं भुवनं विश्वम—स्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अ—स्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥ २ ॥

अर्थ— [११७४] (अङ्गिरसां सामभिः स्तूयमाना देवाः) अङ्गिरसोंके सामोंसे प्रशंसित हुए देव (अवसा) सुरक्षाके साधनोंसे युक्त होकर (नः उप आ गमन्तु) हमारे पास आवें। (इन्द्रः इन्द्रियैः) इन्द्र अपनी शक्तियोंके (मरुतः मरुद्भिः) मरुत् वीरोंके (अदितिः आदित्यैः) तथा अदिति आदित्योंके साथ (नः शर्म यंसत्) हम सबको सुख देवे ॥ २ ॥

[११७५] (तत् चनः नः) वह मधुर अन्न हम सबको (इन्द्रः, तत् वरुणः, तत् अग्निः, तत् अर्यमा, तत् सविता धात्) इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा, सविता देवे (तत् नः) और इस हमारी इच्छाका अनुमोदन (मित्रः वरुणः अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देव करें ॥ ३ ॥

[१०८]

[११७६] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (वां चित्रतमः यः रथः) आपका जो विलक्षण रथ है (विश्वानि भुवनानि अभि चष्टे) वह सब भुवनोंको देखता है । (तेन सरथं तस्थिवांसा) उस रथमें इकट्ठे बैठकर (आ यातं) तुम दोनों यहाँ आओ । (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और सोमका निचोडा हुआ रस पीओ ॥ १ ॥

[११७७] (इदं विश्वं भुवनं) यह सब विश्व (यावत् उरुव्यचा वरिमता गभीरं अस्ति) जितना विस्तृत और उत्तम गंभीर है (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (युवभ्यां पातवे) तुम्हारे पीनेके लिए तैयार किया हुआ यह (सोमः) सोमरस (तावन्) वैसा ही है। (मनसे अरं अस्तु) यह तुम्हारी इच्छाके लिये यह पर्याप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ— अंगिरसोंके सामगानोंसे आकृष्ट होकर देव सुरक्षाके साधनोंके साथ, इन्द्र अपनी शक्तियों सहित, मरुत् अपने वीरोंके साथ और अदिति अपने आदित्योंके साथ आकर हमें सुख देवें, तथा वरुण, अग्नि, सिन्धु, पृथिवी आदि देव भी हमारी हर तरहसे सहायता करें ॥ २-३ ॥

हे वीर और ज्ञानी ! तुम दोनोंका रथ बहुत सुन्दर है, उस पर बैठनेवाला सब लोकोंका निरीक्षण करता है । उसी रथपर बैठकर तुम दोनों इधर आओ । इसी प्रकार वीर और ज्ञानी अपने राष्ट्रके सब देशों और प्रान्तोंका निरीक्षण करें । देशमें ज्ञान प्रसार और उसकी सुरक्षापर ध्यान दें ॥ १ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११७८ चक्राथे हि सध्र्यङ्नाम भद्रं संधीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥ ३ ॥

११७९ समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागिन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥ ४ ॥

११८० यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ५ ॥

११८१ यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ६ ॥

अर्थ— [११७८] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (नाम) तुम दोनोंका नाम (सध्र्यक् भद्रं चक्राथे) साथ साथ ही कल्याण करनेवाला है। (उत) और (वृत्रहणौ) हे वृत्रका वध करनेवालो ! (संधीचीना स्थः) तुम दोनों साथ रहते हो (हि वृषणा) हे बलवान् वीरो ! (तौ सध्र्यञ्चा निषद्य) वे तुम दोनों साथ बैठकर (वृष्णः सोमस्य आ वृषेथां) बलवर्धक सोमरससे बल बढाओ ॥ ३ ॥

[११७९] (अग्निषु समिद्धेषु) अग्नि प्रदीप्त होनेपर (आनजाना) जिनके लिये हवन हो रहे हैं, (यतस्रुचा) जिनके लिये चमस भरकर रखे हैं (बर्हिः उ तिस्तिराणा) आसन जिनके लिये फैलाये जा रहे हैं (इन्द्राग्नी) ऐसे हे इन्द्र और अग्नि ! (तीव्रैः परिषिक्तेभिः सोमैः) तीव्र सोमरस पानी मिलाकर तैयार होते ही (अर्वाक् सौमनसाय आयातं) आप हमारे पास सोमपानके लिये आईये ॥ ४ ॥

[११८०] (हे इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यानि वीर्याणि चक्रथुः) जो वीरताके कर्म तुमने किये थे (यानि रूपाणि वृष्ण्यानि) और जो रूप बलोंके साथ तुमने प्रकट किये (वां प्रत्नानि शिवानि या सख्या) तथा तुम्हारे जो पुरातन कालसे चले आये कल्याण करनेवाले मित्रताके कर्म हैं (तेभिः सुतस्य सोमस्य पिबतं) उनका स्मरण करते हुए, इस सोमरसका पान करो ॥ ५ ॥

[११८१] (प्रथमं वां वृणानः) सबसे प्रथम तुम दोनोंकी प्राप्तिकी इच्छासे (यत् अब्रवं) मैंने कहा था (असुरैः अयं नः सोमः विहव्यः) कि, ' ऋत्विजोंने यह हमारा सोमरस आपको देनेके लिये ही तैयार किया है ' (सत्यां तां श्रद्धां अभि आ यातं) अतः इस मेरी सच्ची श्रद्धाके अनुसार तुम दोनों मेरे पास आओ (हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और निचोडे सोमरसका पान करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह विश्व इतना विस्तृत और गम्भीर है कि इसका अन्त पाना असंभव है। वीर गण इस विश्वकी गम्भीरता पर विचार करें और जहांतक हो सके सबका कल्याण करें। वीरोंको चाहिए कि वे घेरनेवाले शत्रुओंका नाश करें और अपना नाम जनताके कल्याणके कार्यमें यशस्वी करें ॥ २-३ ॥

प्रदीप्त अग्निमें हवन करें। यह आत्मसमर्पणका पाठ है। जिस तरह अग्निमें हवि अर्पित की जाती है, उसी प्रकार वीर जनताके कल्याणके कामोंमें अपना जीवन समर्पित करें। ये वीर यथाशक्ति पराक्रम करें। क्योंकि पराक्रम करना ही वीरोंका स्वभाव है। ये वीर अपने शरीर सुदृढ और बलिष्ठ बनाते हैं। ऐसे बलवान् वीरोंकी मित्रता स्थायी और कल्याण करनेवाली होती है ॥ ४-५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११८२ यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ७ ॥

११८३ यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ८ ॥

११८४ यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ९ ॥

११८५ यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १० ॥

११८६ यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत् पृथिव्यां यत् पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ११ ॥

अर्थ— [११८२] (यजत्रा इन्द्राग्नी) हे यज्ञके योग्य इन्द्र और अग्नि ! (स्वे दुरोणे यत्) जो तुम अपने घरमें (यत् वा ब्रह्मणि) ज्ञानी भक्तके प्रवचनमें (राजनि) अथवा राजाके घरमें (मदथः) आनन्द मनाते होंगे (अतः परि) तो भी वहांसे (वृषणौ) हे बलवान् देवो ! (आयातं हि) इधर आजावो, (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और इस निचोडे सोमरसका पान करो ॥ ७ ॥

[११८३] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यत् यदुषु, तुर्वशेषु, यत् द्रुह्युषु, अनुषु, पूरुषु स्थः) तुम दोनों यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु अथवा पुरुके यज्ञोंमें हो (अतः) तो वहांसे (वृषणौ) हे बलवान् देवो ! (परि आ यातं हि) इधर आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और सोमरस पीओ ॥ ८ ॥

[११८४] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यत् अवमस्यां) तुम निचले (मध्यमस्यां) बीचके (उत परमस्यां पृथिव्यां स्थः) और ऊपरले भूविभागमें हो (वृषणौ) तो हे बलवान् देवो ! (अतः परि आ यातं हि) वहांसे इधर आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और यह सोमरस पीओ ॥ ९ ॥

[११८५] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यत् परमस्यां) तुम ऊपरके (मध्यमस्यां) बीचके (अवमस्यां पृथिव्यां स्थः) और नीचेके भूविभागमें हो (वृषणौ) तो हे बलवान् देवो ! (अतः परि आ यातां हि) वहांसे इधर आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और इस सोमरसका पान करो ॥ १० ॥

[११८६] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यत् दिवि) जो तुम दोनों द्युलोकमें (यत् पृथिव्यां) पृथ्वीपर (यत् पर्वतेषु) पर्वतोंमें (ओषधिषु) औषधियोंमें (अप्सु स्थः) अथवा जलोंमें हो (वृषणौ) तो हे बलवान् देवो ! (अतः परि आ यातं हि) वहांसे यहां आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और इस सोमरसका पान करो ॥ ११ ॥

भावार्थ— वीरके मनमें श्रद्धा हो और वह श्रद्धा भक्तिसे देवोंकी उपासना करे । अश्रद्धासे दी गई हवि व्यर्थ होती है । इसलिए सदा श्रद्धासे ही अग्नि प्रज्ज्वलित करें और श्रद्धापूर्वक ही उसमें हवि देवे । ये वीर अपने देशमें ज्ञानका प्रसार करके और उत्तम राज्यप्रबन्ध करके आनंदित होते हैं । प्रजाओंके आनन्दमें ही इनका आनन्द है ॥ ६–७ ॥

राष्ट्रके वीर अहिंसक, हिंसक शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले, देशद्रोहियोंको दूर करनेवाले, प्राणोंके बलसे युक्त और नगरोंमें रहनेवाले नागरिक इन पांच प्रकारके लोगोंकी रक्षा करते हैं और उनकी उन्नतिके लिए यत्न करते हैं । अथवा ये वीर पांचों वर्णोंके मानवोंका हित करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

पृथ्वीके निम्न, मध्य और ऊंचे प्रदेशमें ये वीर जाते हैं और वहांके जनोंका उद्धार करते हैं । ये सभी प्रदेशोंमें रहनेवाले मानवोंकी सेवा करते हैं ॥ ९–१० ॥

आकाश, पर्वत, पृथिवी, औषधि और जलस्थान आदिमें ये वीर जाते हैं । आकाशमें संचार विमानोंसे होता है । इन सब स्थानोंमें ये वीर जाते हैं और सब स्थानोंकी सुरक्षा करते हैं ॥ ११ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११८७ यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १२ ॥
११८८ एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १३ ॥

[१०९]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११८९ वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १ ॥
११९० अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥ २ ॥

अर्थ— [११८७] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (उदिता सूर्यस्य) सूर्यके उदय होनेपर (दिवः मध्ये) द्युलोकके मध्यमें (यत् स्वधया मादयेथे) अन्नसेवनका आनन्द लेते हों (अतः) तो भी (वृषणौ) हे बलवान् देवो ! (परि आ यातं हि) यहां आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और सोमके रसका पान करो ॥ १२ ॥

[११८८] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (सुतस्य एव पपिवांसा) सोमरसका पान करके (अस्मभ्यं विश्वा धनानि सं जयतं) हमें सब प्रकारके धन जीत कर दो (नः तत्) हमारी इस इच्छाको (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ आदि देव सहायक हों ॥ १३ ॥

[१०९]

[११८९] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (वस्यः इच्छन्) अभीष्ट-प्राप्तिकी इच्छा करता हुआ मैं (ज्ञासः उत वा सजातान्) कोई ज्ञानी और जातिबांधव मिलेंगे ऐसा (मनसा वि हि अख्यं) मनसे विचार करके देख रहा हूं (मह्यं युवत् अन्या प्रमतिः न अस्ति) मेरे विषयमें तुम्हारी विभिन्न बुद्धि नहीं है (सः) वह मैं (वां वाजयन्तीं धियं अतक्षतं) तुम्हारे सामर्थ्यका वर्णन करनेवाला स्तोत्र बनाता हूं ॥ १ ॥

[११९०] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (विजामातुः उत वा स्यालात्) आप दामाद अथवा सालेसे भी (घ वां भूरिदावत्तरा अश्रवं हि) अधिक दान करनेवाले हैं ऐसा मैं सुनता हूं (अथ युवभ्यां सोमस्य प्रयती) तुम दोनोंके लिये सोमरसका अर्पण करके (नव्यं स्तोमं जनयामि) नवीन स्तोत्र निर्माण करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ— सूर्यके उदय होनेपर सब वीर मिलकर सूर्यप्रकाशमें खाते पीते और आनन्द मनाते है। वीरोंका यह स्वभाव ही होता है कि जो भी आनंद वे मनाते हैं, सब मिलकर मनाते हैं। संघटन करनेका यह एक उत्तम मार्ग है। ये जो भी काम करते हैं, मिलकर करते हैं। ये सभी वीर मिलकर शत्रुओंपर चढाई करते हैं, मिलकर धन जीतते हैं और आपसमें बांटते हैं। सभी स्वयंसेवक इस प्रकार जनताकी सेवा करते हुए अपना जीवन यशस्वी बनाते हैं ॥ १२-१३ ॥

धनकी इच्छा करता हुआ मनुष्य ज्ञानी और सजातियोंकी सहायताकी अपेक्षा करे। यह सब वीरोंकी सुरक्षामें रहते हुए ही हो सकता है। यदि धन प्राप्त करनेकी इच्छा हो, तो प्रथम ज्ञानियोंकी संगतिसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और सजातियोंकी सहानुभूति प्राप्त करनी चाहिए। बल बढानेवाली बुद्धि निर्माण करनी चाहिए। बुद्धि ऐसी चाहिए कि जिससे व्यक्ति और संघका बल बढता रहे ॥ १ ॥

जामाता और सालेसे भी अधिक धन ये वीर देते हैं। जामाता जिस प्रकार अपनी पत्नीके लिए अथवा साला जिस प्रकार अपनी बहिनके लिए आनंददायी पदार्थ बहुत ज्यादा देता है, उससे भी अधिक धन ये वीर देते हैं। ऐसे दानियोंका सर्वत्र सत्कार होना चाहिए ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११९१ मा च्छैद्म रश्मींरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्रीं धिषणाया उपस्थे ॥ ३ ॥
११९२ युवाभ्यां देवी धिषणा मदाय—न्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ४ ॥
११९३ युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ ॥
११९४ प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६ ॥

अर्थ— [११९१] (रश्मीन् मा छेद्म) ' हमारे संतानरूपी किरणोंका विच्छेद न हो ' (इति नाधमानाः) ऐसी प्रार्थना करनेवाले (पितॄणां शक्तीः अनुयच्छमानाः) तथा ' पितरोंकी शक्ति वंशजोंमें अनुकूलतासे रहे, ऐसी इच्छा करनेवाले (वृषणः) बलवान् (इन्द्राग्निभ्यां) इन्द्र और अग्निकी कृपासे (कं मदन्ति) सुख आनन्दसे प्राप्त करते हैं, (हि अद्री धिषणायाः उपस्थे) इसलिये इन देवोंको सोमरस देनेके लिये ये दो पत्थर सोमपात्रोंके समीप ही रखे हैं ॥ ३ ॥

[११९२] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (युवाभ्यां मदाय) तुम्हारे संतोषके लिये (देवी उशती धिषणा) ये दिव्य सोमपात्र (सोमं सुनोति) सोमरस निकालकर भरकर रखे हुए हैं। (अश्विना) हे अश्विनौ ! (भद्रहस्ता) उत्तम हाथवाले (सुपाणी तौ) कल्याण करनेवाले तुम दोनों (आ धावतं) दौडते हुए इधर आओ (अप्सु मधुना पृङ्क्तं) और जलोंमें इस मधुर रसको मिला दो ॥ ४ ॥

[११९३] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (वसुनः विभागे) धनका बंटवारा करनेके समय (वृत्रहत्ये) तथा वृत्रका वध करनेके कार्यके समय (तवस्तमा युवां) आप दोनों सबसे अधिक वेग दर्शाते हैं (शुश्रव) ऐसा हम सुनते हैं, (चर्षणी) हे फूर्तीवाले देवो ! (तौ) वे आप दोनों (अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आसद्य) इस यज्ञमें आसनपर बैठकर (सुतस्य प्र मादयेथां) सोमरससे आनन्द प्राप्त करो ॥ ५ ॥

[११९४] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (पृतनाहवेषु चर्षणिभ्यः) युद्धार्थ आह्वान करनेवाले वीरोंकी अपेक्षा (महित्वा प्र रिरिचाथे) महत्त्वसे तुम अधिक श्रेष्ठ हो। (पृथिव्याः प्र) तथा पृथिवी (दिवः च, सिन्धुभ्यः प्र, गिरिभ्यः) द्युलोक, नदियाँ, पर्वत (प्र, अन्या विश्वा भुवना) तथा जो अन्य भुवन होंगे, उनसे भी तुम प्रभावमें अधिक हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे वीरो! किरणोंका विच्छेद न करो प्रकाशको मत हटाओ। सन्ततिका विच्छेद न करो। परम्पराको छिन्न भिन्न न करो। पितरोंकी जो शक्तियां हैं, वे शक्तियां सन्तानोंमें उतरें, वे बीचमें विच्छिन्न न हों। पितरोंकी अपेक्षा सन्तानोंमें अधिक शक्तियां हों। वंशमें उत्तरोत्तर शक्तियोंकी वृद्धि होती जाए, कभी शक्ति कम न हो ॥ ३ ॥

घुडसवार कल्याणके कर्म करनेवाले हों। वीर सदा ऐसे ही कर्म करें, जिनसे जनताका कल्याण ही हो। धनका दान करते समय तथा शत्रुपर आक्रमण करनेके समय वीरोंका वेग बढे। दान और शत्रुनाश ये दोनों कार्य अत्यन्त उत्साहसे करें ॥ ४–५ ॥

इन्द्र और अग्नि ये दोनों देव युद्धोंके समय जनताका हित करनेके लिए उत्साहसे भरपूर रहते हैं। युद्धके अवसर पर ये वीर कभी भी पीछे नहीं हटते। ऐसे जनहित करनेवाले वीरोंका महत्त्व द्युलोक, नदियां, पर्वत तथा अन्य भुवनोंसे भी अधिक है। क्योंकि इनसे मिलनेवाली सहायताकी अपेक्षा वीरोंकी सहायता अधिक महत्त्वपूर्ण है ॥ ६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११९५ आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७ ॥

११९६ पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्ता—स्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

[११०]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- ऋभवः । छन्दः- जगती; ५, ९ त्रिष्टुप् ।)

११९७ ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥ १ ॥

अर्थ— [११९५] (वज्रबाहू इन्द्राग्नी) वज्रके समान जिनके बाहु बलवान् हैं, ऐसे हे इन्द्र और अग्नि ! (आ भरतं) धन हमारे घरोंमें भर दो, (शिक्षतं) हमें सिखा दो (अस्मान् शचीभिः अवतं) और हमें सामर्थ्यसे सुरक्षित करो (येभिः नः पितरः सपित्वं आसन्) जिनके साथ हमारे पितर मिले रहे, (ते सूर्यस्य रश्मयः इमे नु) वेही सूर्यकी किरणें ये हैं ॥ ७ ॥

[११९६] (वज्रहस्ता पुरंदरा इन्द्राग्नी) हे हाथमें वज्र धारण करनेवाले, शत्रुके नगर तोडनेवाले इन्द्र और अग्नि ! (शिक्षतं) हमें शिक्षित करो (भरेषु अस्मान् अवतं) युद्धोंमें हमें सुरक्षित करो (नः तत्) इस हमारी इच्छाको (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देव सहायता करें ॥ ८ ॥

[११०]

[११९७] (ऋभवः) हे ऋभुदेवो ! (मे अपः ततं) मेरा कर्तव्य कर्म समाप्त हुआ है, (तत् उ पुनः तायते) वही फिरसे करूंगा (स्वादिष्ठा धीतिः) यह मीठी स्तुति (उचथाय शस्यते) देवोंका वर्णन करनेके लिये कही जाती है (अयं समुद्रः) यह सोमरसका समुद्र (इह विश्वदेव्यः) यहां सब देवोंके लिये रखा है (स्वाहाकृतस्य) स्वाहा कहनेपर (सं उ तृप्णुत) उससे तृप्त हो जाओ ॥ १ ॥

भावार्थ— धन भरपूर देना चाहिए, अनपढोंको ज्ञान देना चाहिए, शक्तियोंको बढाकर सबकी सुरक्षा करनी चाहिए । ज्ञान, धन और शक्ति इन तीनसे ही सुरक्षा होती है । इन वीरोंके संरक्षणका कार्य सूर्यकी किरणोंके समान है । जैसे सूर्यकिरणें अपने प्रकाश द्वारा रोग दूर करके सबकी सुरक्षा करती हैं, वैसे ही यह वीर सब शत्रुओंको दूर करके सबकी सुरक्षा करते हैं ॥ ७ ॥

शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले, वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले, बलवान् बाहुवाले वीर प्रजाको युद्ध विद्याकी शिक्षा देवें और युद्धोंके समय सबकी सुरक्षा करें ॥ ८ ॥

मेरा यह व्यापक कर्म फैल गया है, वही कर्म मैं पुनः फैलाऊँगा । " अपस् " का अर्थ सार्वदेशिक हितका कर्म है । वह कर्म कि जिसका परिणाम सब मनुष्य जातितक अच्छी तरह पहुंचता है, जिससे जनताका हित होता है, ऐसा यज्ञकर्म । देवपूजा, राष्ट्रमें प्रजाओंका संगठन और निर्बलोंको दान देकर सबल बनानेका काम मनुष्य बार बार करें ॥ १ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११९८ आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतना पाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमना गच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २ ॥

११९९ तत् सविता वोऽमृतत्वमासुव दगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३ ॥

१२०० विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥ ४ ॥

अर्थ—[११९८] (अपाकाः प्राञ्चः मम आपयः) अत्यंत प्राचीन मेरे आप्त जैसे आप (के चित् आभोगयं इच्छन्तः) जब भोग करनेकी इच्छासे (यत् प्र ऐतन) आगे बढने लगे (सौधन्वनासः) तब हे सुधन्वाके पुत्रो । (चरितस्य भूमना) अपने सुचरित्रके महत्त्वसे (दाशुषः सवितुः गृहं) उदार दानवीर सविताके घरपर (अगच्छत) आप पहुंच गये ॥ २ ॥

[११९९] (यत् अगोह्यं श्रवयन्तः ऐतन) जब गुप्त न रहनेवाले सविताका यशगान करते हुए आप वहां गये (तत् सविता वः अमृतत्वं आसुवत्) तब उस सविताने उसी समय आपको अमरत्व दिया (असुरस्य) जीवन-शक्तिका प्रदान करनेवाल उस देवका (भक्षणं तं चमसं) भक्षण करनेका एकही चमस था (एकं चित् सन्तं चतुर्वयं अकृणुत) उस एक हीके आपने चार बना दिये ॥ ३ ॥

[१२००] (वाघतः शमी तरणित्वेन विष्ट्वी) उपासनाका कर्म शीघ्र कुशलतासे करनेवाले (मर्तासः सन्तः) ये मर्त्य होते हुए भी (अमृतत्वं आनशुः) अमरत्वको प्राप्त हुए । (सौधन्वनाः) ये सुधन्वाके पुत्र (सूरचक्षसः ऋभवः) सूर्यके समान तेजस्वी ऋभु (संवत्सरे धीतिभिः सं अपृच्यन्त) एकही वर्षके अन्दर स्तुतिस्तोत्रोंको भी प्राप्त हुए ॥ ४ ॥

१ मर्तासः अमृतत्वं आनशुः— मर्त्य मनुष्य भी देवत्व प्राप्त कर सकते हैं ।

भावार्थ— सभी मनुष्य उत्तम धनुषवाले हों, सभी वीर हों। युद्धके समय सभी शत्रुओंका मुकाबला करनेमें समर्थ हों। सभी प्राचीन पुरुषोंकी तरह आप्त अर्थात् श्रेष्ठ हों । सभी धार्मिक हों । सभीका चरित्र उत्तम और उदार हो। गरीबोंकी सहायता करनेवाले हों और दानवीर हों । इस प्रकार स्वयं उन्नत और श्रेष्ठ होकर दूसरोंको भी प्रेरणा देनेवाले हों ॥ २ ॥

ये ऋभुगण कुशल हैं । ये प्रथम मनुष्य थे, पर जब इन्होंने सबको प्रेरणा देनेवाले सविताकी प्रार्थना की, तो ये अमर हो गए । इसी प्रकार मनुष्य भी अपने प्रयत्नों और कुशलतासे अमर देव बन सकता है। अमर देव बननेके बाद ये सोमपानके अधिकारी बने और जीवनशक्ति प्राप्त की । यह सोम असुर अर्थात् प्राणशक्तिका दाता है । सोमरसमें जीवन सत्व अत्यधिक है इसलिए उसे असु-र कहा गया है। सोम यह ब्रह्मज्ञान है । ब्रह्मज्ञानी सर्वाधिक जीवनशक्तिवाला होता है। पर मनुष्य ब्रह्मज्ञानी तभी बन सकता है, जब वह देव बन जाए ॥ ३ ॥

ये ऋभु मर्त्य अर्थात् मरणशील होते हुए भी उपासना और अपनी कर्मकुशलताके द्वारा अमरत्वको प्राप्त हुए और अमरत्वको प्राप्त करके सूर्यके समान तेजस्वी होकर एक ही वर्षके अन्दर सबके द्वारा पूजे जाने लगे। इसी तरह मनुष्य मरणधर्म होनेपर भी भगवान्‌की उपासनासे अमरत्व प्राप्त कर सकता है और सूर्यके समान तेजस्वी होकर थोडे ही समयमें सबका पूज्य हो सकता है ॥ ४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१२०१ क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥ ५ ॥

१२०२ आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विश्वना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन् दिवो रजः ॥ ६ ॥

१२०३ ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीया नृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुदेदिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽ ऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥ ७ ॥

अर्थ—[१२०१] (उपमं नाधमानाः) उपमा देनेयोग्य यशकी इच्छा करनेवाले (अमर्त्येषु श्रवः इच्छमानाः) देवोंमें भी कीर्तिकी इच्छा करनेवाले (उपस्तुताः ऋभवः) प्रशंसाको प्राप्त हुए ऋभुओंने (जेहमानं एकं पात्रं) वारंवार बर्ते जानेवाले एक पात्रको, (क्षेत्रमिव) क्षेत्रके समान (तेजनेनं वि ममुः) तीक्ष्ण धारवाले शस्त्रसे नापा और बन दिया ॥ ५ ॥

[१२०२] (अन्तरिक्षस्य नृभ्यः) अन्तरिक्षमें रहनेवाले इन मानवरूपधारी ऋभुओंके लिये (स्रुचा इव घृतं) चमससे घृतकी आहुति (मनीषां विश्वना) मनःपूर्वककी स्तुतिके साथ (आ जुहवाम) हम अर्पण करेंगे। (ये ऋभवः) ये ऋभु (अस्य पितुः) इस विश्वके पिताके साथ (तरणित्वा सश्चिरे) सत्वर कार्य करनेके कारण रहने लगे (दिवो रजः वाजं अरुहन्) द्युलोक और अन्तरिक्ष लोकपर बलके साथ आरोहण करने लगे ॥ ६ ॥

[१२०३] (शवसा नवीयान् ऋभुः नः इन्द्रः) बलसे युक्त होनेके कारण नवीन जैसा तरुण ऋभु हमारे लिये इन्द्र ही है (वाजेभिः वसुभिः ऋभुः वसुः ददिः) बलों और धनोंके साथ रहनेवाले ये ऋभु हमें धनोंके दाता ही हैं (देवाः) हे देवो! (युष्माकं अवसा) तुम्हारी सुरक्षासे सुरक्षित हुए हम (प्रिये अहनि) किसी प्रिय दिनमें (असुन्वतां पृत्सुतीः अभि तिष्ठेम) अयज्ञशील शत्रुओंकी सेनापर विजय प्राप्त करें ॥ ७ ॥

१ असुन्वतां पृत्सुतीः अभितिष्ठेम— यज्ञ न करनेवालोंकी सेनाका हम पराभव करें ।

भावार्थ— ऋभुओंने कुशलतासे पात्रको खेतके समान नाप कर उत्तम बनाया। ऋभु जो भी काम करते हैं, उत्तम रीतिसे करते हैं, इसीलिए वे देवोंमें भी यशके भागी होते हैं। प्रथम तो देव ही बनना मुश्किल, ऊपरसे देवोंमें भी यशस्वी होना तो और भी मुश्किल। पर जो मनुष्य ऋभुओंके समान कुशल होगा, वह अवश्य देवोंमें भी यशस्वी होगा। इस मंत्रमें खेतको मापनेकी उपमा दी है। वैदिक राज्यपद्धतिमें भी खेतोंकी लम्बाई चौडाईका परिमाण नापा जाता था। फिर नापकर उसपर कर आदि लगाये जाते थे ॥ ५ ॥

ये ऋभु मानवका रूप धारण कर अन्तरिक्षमें विचरते हैं। तथा अपने कार्य शीघ्रता एवं कुशलतासे करनेके कारण इस विश्वके पिता प्रजापतिके साथ रहते हैं तथा अपने बलसे बलशाली होकर द्युलोक और अन्तरिक्ष पर आरोहण करते हैं। जो मनुष्य अपने कार्योंको शीघ्रता एवं कुशलतासे करता है, तथा अपने बलसे बलशाली होता है, वह सभीके द्वारा प्रशंसित और पूज्य होता है ॥ ६ ॥

बलसे युक्त होनेके कारण ऋभु सदा नवीन तरुण जैसे दीखते हैं, इसलिए ये सदा इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यसम्पन्न होते हैं। ऐश्वर्यसम्पन्न होनेके साथ ही ये धन और बलका दान करके लोगोंकी सहायता करते हैं। उन ऋभुओंकी सहायता पाकर हम यज्ञ कार्य न करनेवाले अथवा यज्ञकार्यमें विघ्न डालनेवालोंका पराभव करें। राष्ट्रमें प्रजाओंके संगठनका कार्य अत्यन्त आवश्यक है, अतः इस पवित्र कार्यमें जो विघ्न डालते हैं, उनका पराभव अवश्य करना चाहिए ॥ ७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१२०४ निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितरा कृणोतन ॥ ८ ॥

१२०५ वाजेभिर्नो वाजसाताविविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥

[१११]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- ऋभवः । छन्दः- जगती; ५ त्रिष्टुप् ।)

१२०६ तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापस स्तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद्वय स्तक्षन् वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥ १ ॥

१२०७ आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥ २ ॥

अर्थ—[१२०४] (ऋभवः) हे ऋभुदेवो ! (चर्मणः गां निः अपिंशत) चर्मवाली अति कृश गौ तुमने सुंदर-रूपवाली बना दी (मातरं पुनः वत्सेन सं असृजत) तब उस गोमाताके साथ बछडेका संबंध भी तुमने करा दिया (सौधन्वनासः) हे सुधन्वाके पुत्रो ! (नरः) हे नेता वीरो ! (स्वपस्यया जिव्री पितरा) अपने प्रयत्नसे अति वृद्ध मातापिताओंको (युवाना अकृणोतन) तरुण बना दिया ॥ ८ ॥

[१२०५] (ऋभुमान् इन्द्र !) हे ऋभुओंके साथ इन्द्र ! (वाजसातौ वाजेभिः अविड्ढि) बलसे पराक्रम करनेके युद्धमें अपने सामर्थ्योंके साथ घुस जाओ (चित्रं राधः आदर्षि) विलक्षण धन हमें दो (नः तत्) यह हमारा प्रिय कार्य (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देवोंसे अनुमोदित होवे ॥ ९ ॥

[१११]

[१२०६] (विद्मनापसः) ज्ञानसे कुशल बने ऋभुदेवोंने (रथं सुवृतं तक्षन्) सुंदर रथ निर्माण किया। (इन्द्रवाहाः हरी वृषण्वसू तक्षन्) इन्द्रके रथमें जोडनेयोग्य घोडे भी बनाये (पितृभ्यां युवत् वयः ऋभवः तक्षन्) मातापिताओंके लिये तारुण्यकी आयु दी (वत्साय मातरं सचाभुवं तक्षन्) और बछडेके लिये माताको उसके साथ रहनेयोग्य बनाया ॥ १ ॥

[१२०७] (नः यज्ञाय) हमें यज्ञ करनेके लिये (ऋभुमत् वयः आ तक्षत) ऋभुओंके समान तेजस्वी आयु दो। (क्रत्वे दक्षाय) सत्कर्म करनेके लिये और बल बढानेके लिये (सुप्रजावतीं इषं) प्रजा बढानेवाला अन्न ही हमें दो (सर्ववीरया विशा) सब वीरोंके साथ और प्रजाके साथ (यथा क्षयाम) जिस तरह हम निवास कर सकें, (तत् इन्द्रियं) वैसा इन्द्रियसंबंधी बल (नः शर्धाय) हमारी संघटनाके लिये (सु धासथ) हममें उत्पन्न करो ॥ २ ॥

भावार्थ— ऋभुओंने ऐसी गौको, जिसपर केवल चर्म ही रह गया था और मांस पूरी तरहसे नष्ट हो चुका था, फिरसे सुन्दर अवयववाली और हृष्टपुष्ट बनाया। दुधारु बनाया, पश्चात् बछडेके साथ उसे संयुक्त किया। अपने प्रयत्नोंसे अत्यन्त वृद्ध मातापिताको भी तरुण बनाया। ऋभु कारीगरीमें तो कुशल हैं ही, पर चिकित्सामें भी पूरी तरह कुशल हैं ॥८॥

हे ऋभुओंके साथ रहनेवाले इन्द्र ! बलपूर्वक जिसमें पराक्रम किया जाता है, ऐसे युद्धमें अपने सामर्थ्यसे घुस जाओ और उसमें धनोंको जीतकर हमें दो। तुम्हारे साथ ही मित्र, वरुण आदि देवगण भी हमें धन प्रदान करें ॥ ९ ॥

अपने विज्ञान और कुशल कर्मसे सुन्दर रथ अच्छी तरह आच्छादित करके बनाया। 'विद्मना' पद विज्ञानका सूचक और 'अपस्' पद कुशल कर्मका द्योतक है। विज्ञान और कुशलतासे ही सब कर्म सिद्ध होते हैं। इन्होंने इन्द्रके रथके घोडे उत्तम रीतिसे सिखाकर तैय्यार किए, बलिष्ठ और हृष्टपुष्ट बनाये, तथा अपने पितरोंको तरुण बनाया ॥ १ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१२०८ आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥ ३ ॥

१२०९ ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतये ऋभून् वाजान् मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥ ४ ॥

१२१० ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१२०८] (नरः ऋभवः) हे नेता ऋभुवीरो ! (अस्मभ्यं सातिं आ तक्षत) हमें योग्य धन दो (रथाय सातिं) रथके लिये शोभा दो (अर्वते सातिं) घोडेके लिये बल दो (विश्वहा नः जैत्रीं सातिं सं महेत) सदा हमें विजय देनेवाला धन दो (पृतनासु जामिं अजामिं) युद्धोंमें हमारे संबंधी अथवा अपरिचित कोई भी सामने हो (सक्षणिं) हम उनका पराभव करें ॥ ३ ॥

[१२०९] (ऋभुक्षणं इन्द्रं ऊतये आ हुवे) ऋभुओंके साथ रहनेवाले इन्द्रको सुरक्षाके लिये बुलाते हैं। (ऋभून् वाजान् मरुतः उभा मित्रावरुणा अश्विना नूनं सोमपीतये) ऋभु, वाज, मरुत, दोनों मित्र और वरुण, दोनों अश्विदेव इन सबको सोमपानके लिये हम बुलाते हैं (नः सातये) हमें वे धनलाभके लिए (धिये जिषे हिन्वन्तु) बुद्धि और विजय प्रदान करें ॥ ४ ॥

[१२१०] (ऋभुः सातिं भराय सं शिशातु) ऋभु हमें धनदान भरपूर देवें (समर्यजित् वाजः) समरमें विजयी वाज (अस्मान् अविष्टु) हमें उत्साह देवे। (नः तत्) यह हमारी आकांक्षा (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आदि देव परिपूर्ण करें ॥ ५ ॥

१ समर्यजित् वाजः अस्मान् अविष्टु— सब शत्रुओंपर विजय प्राप्त करानेवाला बल हममें बढे।

भावार्थ— ऋभुओंका तेजस्वी जीवन यज्ञ कार्यमें ही व्यतीत होता है। देवपूजा, संगठन और दानरूप शुभकर्मोंमें ही मनुष्यका सारा जीवन व्यतीत हो । सत्कर्म करने और बल बढानेके लिए ही मनुष्यका जीवन हो। मनुष्योंके संगठनके लिए ही इन्द्रियोंका बल हो। इस प्रकार संगठन शक्तिसे ही हम सब प्रजाओंके साथ रहें। ये ऋभु ऐसा अन्न तैय्यार करते थे जो बल बढानेवाला और सुसन्तानोत्पादक होता था। जिसका सेवन करनेसे निर्बल भी बलवान् और निस्सन्तान भी सन्तानवाले हो जाते थे। ये ऋभुओंकी कुशलताके कार्य थे ॥२॥

हमारे विजय देनेवाले वैभवका सदा सम्मान होता रहे। युद्धोंमें सदा, चाहे कोई हमारा सम्बन्धी हो या पराया हो, उन सबका हम पराभव करें और इस प्रकार हम नित्य विजय प्राप्त करें। ऋभुगण भी हमें शत्रुको हरानेके कार्यमें निपुण घोडे आदि धन देवें ॥ ३ ॥

स्तुति करनेवाले ऋभु मनुष्य होते हुए भी वे अमरत्व–देवत्वको प्राप्त हुए और एक ही वर्षमें उनकी स्तुतियां भी होने लगीं। इस तरह मनुष्य देवत्व प्राप्त करते थे। देवजाति तिब्बतमें रहती थी और मानवजाति आर्यावर्तमें रहती थी। आवश्यकतानुसार वीर तथा कुशल मानवोंको देवराष्ट्रमें रहनेका अधिकार मिलता था। इसी तरह ऋभु और मरुत् मानव होते हुए भी देवराष्ट्रमें रहनेके अधिकारी बने। इसी प्रकार सभी मनुष्य प्रयत्न करके देव बन सकते हैं। देव बनकर शत्रुओंको हरानेवाला बल प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे प्रयत्नशील मनुष्यकी मित्र, वरुण आदि देवगण भी सहायता करते हैं ॥ ४–५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[११२]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- १ (आद्यपादस्य) द्यावापृथिव्यौ, १ (द्वितीयपादस्य), अग्निः, १ (उत्तरार्धस्य) अश्विनौ, २-२५ अश्विनौ । छन्दः- जगती; २४-२५ त्रिष्टुप् ।)

१२११ ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये ऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १ ॥

१२१२ युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २ ॥

---

[११२]

अर्थ— [१२११] (यामन् इष्टये) पहिले ही समयमें यज्ञ करनेके लिए और (पूर्वचित्तये) प्रथम ही अपना चित्त लगानेके लिये (सुरुचं घर्मं) अच्छी दीप्तिवाले और गर्म (अग्निं द्यावा-पृथिवी ईळे) अग्नि और द्यावापृथिवीकी स्तुति मैं करता हूँ; हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (याभिः) जिनसे (कारं) कार्य कुशल पुरुषको (भरे अंशाय जिन्वथः) संग्राममें अपना हिस्सा पानेके लिये प्रेरित करते हो (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षाओंके साथ (सु आगतं) तुम दोनों भली भाँति हमारे पास आओ ॥ १ ॥

[१२१२] हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (सुभराः असश्चतः) उत्तम ढंगसे भरण पोषण करनेके इच्छुक अतएव इधर उधर भ्रमण न करनेवाले लोग (वचसं मन्तवे न) विद्वान्के पास उसकी सलाह पूछनेके लिये जैसे जाते हैं, वैसे (रथं युवोः दानाय आतस्थुः) तुम्हारे रथके पास तुम्हारा दान प्राप्त करनेके लिये खडे रहते हैं, (कर्मन् इष्टये) कर्म करनेके लिए और इष्टकी प्राप्तिके लिए (याभिः धियः अवथः) जिनसे उनकी बुद्धियोंका संरक्षण तुम दोनों करते हो, (ताभिः ऊतिभिः सु आगतं) उन्हीं रक्षाओंसे तुम दोनों ठीक तरह इधर आओ ॥ २ ॥

भावार्थ— मेरा यह यज्ञ सफल हो और इसमें मेरा चित्त लगे, इसलिये मैं द्युलोक, पृथ्वी लोक तथा उसमें रहनेवाले अग्निकी स्तुति सबसे प्रथम करता हूँ । अश्विदेवो ! कुशल शूर पुरुषको युद्धमें अपना भाग प्राप्त कर लेनेके लिये जिन रक्षक शक्तियोंके साथ उसे तुम दोनों प्रेरित करते हो, उन संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे पास आओ और हमारी सुरक्षा करो । अपना सत्कर्म सफल बनानेकी इच्छासे मनुष्य देवताकी प्रार्थना करे । अपना न्याय्य भाग प्राप्त करनेके लिये आवश्यक हुए युद्धमें जानेके लिये कुशलतासे युद्ध करनेवाले शूर पुरुषको नेता लोग प्रेरणा दें । नेता उनकी हर प्रकारकी सुरक्षा और सहायताका प्रबंध करे ॥ १ ॥

जो लोग अपना भरण पोषण उत्तम प्रकारसे करना चाहते हैं, वे किसी अन्यके पास इधर उधर भ्रमण नहीं करते, वे सीधे अश्विदेवोंके रथके पास उसी प्रकार आते हैं और उनसे दान प्राप्त करते हैं; जिस तरह विद्वान्से संमति मांगनेके लिए उनके पास लोग जाते हैं । जिन संरक्षक शक्तियोंसे अश्विदेव उनकी बुद्धियों और कर्मोंकी रक्षा करते हैं, उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आवें और हमारी रक्षा करें । अनुयायी लोग अपने नेताके पास जायें, उनकी सलाह लें और उनसे आवश्यक सहायता माँगें । नेता लोग उनकी हर प्रकारसे सहायता करें । नेता अनुयायियोंकी बुद्धि विकसित करें और उनके शुभ कर्मोंकी रक्षा करके उनकी वृद्धि करें ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१२१३ युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ३ ॥

१२१४ याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षण स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ४ ॥

१२१५ याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद् वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१२१३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (नरा) हे नेताओ ! (युवं दिव्यस्य अमृतस्य मज्मना) तुम दोनों, द्युलोकमें उत्पन्न सोमरस रूपी अमृतके बलसे, (तासां विशां प्रशासने क्षयथः) उन प्रजाओंका राज्य शासन चलानेके लिए उनमें निवास करते हो (याभिः) जिनसे (अस्वं धेनुं) प्रसूत न हुई गौको (पिन्वथः) पुष्ट करके अधिक दुधारू बना दिया, (ताभिः) उन (ऊतिभिः) रक्षाओंसे युक्त होकर (उ) निश्चयसे हमारे पास (सु आगतं) अच्छी तरह आओ ॥ ३ ॥

[१२१४] (परिज्मा द्विमाता) चारों ओर जानेवाला दोनों माताओंसे युक्त (तनयस्य मज्मना) अपने पुत्रके बलसे (याभिः) जिनकी सहायतासे (तूर्षु तरणिः विभूषति) दौडनेवालोंमें आगे निकलनेवाला होकर अलंकृत होता है तथा (त्रिमन्तुः याभिः) तीन मनन साधनोंवाला जिनसे (विचक्षणः अभवत्) महा विद्वान् हो गया, (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षाओंसे युक्त होकर (अश्विनौ) हे अश्विदेवो ! तुम दोनों (सु उ आगतं) ठीक प्रकारसे हमारे पास आओ ॥ ४ ॥

[१२१५] हे (अश्विनौ) अश्विदेवौ ! (निवृतं) पूर्णरूपसे जलमें डुबोये हुए और (सितं रेभं वन्दनं च) बँधे हुए रेभ और वन्दनको (याभिः) जिन साधनोंसे (अद्भ्यः) जलोंसे (स्वः दृशे उत् ऐरयतं) प्रकाशको दिखानेके लिए तुम दोनोंने ऊपर उठाया तथा (सिषासन्तं कण्वं) भक्ति करनेकी इच्छा करनेवाले कण्वको (याभिः प्र आवतं) जिन साधनोंसे तुम दोनोंने भलीभाँति सुरक्षित रखा था, (ताभिः ऊतिभिः उ) उन्हीं रक्षाओंके साधनोंसे युक्त होकर तुम दोनों (सु आगतं) अच्छे प्रकारसे हमारे पास आओ ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे नेता अश्विदेवो ! तुम दोनों सोमरसका पान करनेसे बलवान् बने हो और उस बलके कारण इन सब प्रजाजनोंका राज्य शासन चलानेके लिये उनमें ही रहते हो । तुमने जिन चिकित्सा प्रयोगोंसे प्रसूत न होनेवाली गौको भी प्रसूत होने योग्य बनाकर दुधारूभी बना दिया, उन चिकित्साकी शक्तियोंसे सुसज्ज होकर हमारे पास आओ । नेता लोग औषधि रसोंका सेवन बलवान् बनें प्रजाजनोंका राज्य शासन चलानेके लिये प्रजाओंमें ही रहें, कभी प्रजाको छोड कर अन्य देशमें जा कर न रहें । गौको गर्भवती होने योग्य पुष्ट बनाने और दुधारू बनानेके चिकित्साके प्रयोग करके गौओंके दूधकी वृद्धि करनी चाहिये ॥ ३ ॥

सर्वत्र गमन करनेवाला वायु, दो अरणीरूपी दो माताओंसे उत्पन्न हुए अपने पुत्रस्थानीय अग्निके बलसे युक्त होकर, जिन शक्तियोंसे गतिमानोंमें भी विशेष गतिमान होकर सर्वोपरि विराजता है, तथा त्रिमन्तु (कक्षीवान ऋषि) जिन साधनोंसे बडा विद्वान् बना, उन संरक्षणकी शक्तियोंसे सज्जित बनकर, हे अश्विदेवो ! तुम दोनों यहां हमारे पास आओ (और उनसे हमें लाभ पहुंचाओ) जिस तरह अग्नि और वायु परस्पर सहाय्यक होते हैं और परस्परके बलसे परस्परकी उन्नति करते हैं, इसी तरह द्विजन्मा ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्परकी सहायता करके समूची जनताकी उन्नति करें । जिस तरह त्रिमन्तु विद्वान् हुआ, उसी तरह व्यक्ति, समाज, जनता इन तीनोंकी उन्नतिका मनन करनेवाले सभी युवक विद्वान् बनें । नेता लोग सब प्रकारकी संरक्षक शक्तियां अपने अनुयायियोंकी सहायतार्थ उपयोगमें लायें और उससे जनताकी उन्नति करें ॥ ४ ॥

अश्विदेवोंने जलमें डूबनेवाले और बँधे हुए रेभ और वन्दनको जलसे ऊपर उठाया और प्रकाशमें घूमने योग्य बनाया । इसी तरह उपासक कण्वको सुरक्षित किया । यह सब जिन साधनोंसे किया उन साधनोंके साथ वे देव हमारे पास आवें और उन शक्तियोंसे हमारी सहायता करें । कोई अनुयायी जलमें डूबता हो किसी शत्रुने उसे बंधनमें डाला हो अथवा डर बताया हो, तो उनको सुरक्षाके साधनोंसे तत्काल सहायता पहुंचानी चाहिये और अनुयायियोंको निर्भय बनाना चाहिये ॥५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दैवत-संहिता

सम्पादक— म. म. पं. श्री. दा. सातवलेकर

वेदोंमें पूजक ऋषियोंकी अपेक्षा पूजनीय देवोंकी प्रधानता है। क्योंकि उपासककी अपेक्षा उपास्यकी मुख्यता सर्वत्र होती है। उपासक उपास्यके गुणोंको अपने अन्दर लाकर तद्वत् बनना चाहता है। वेदोंमें भी ऋषि उपासक हैं और देवता उपास्य। ऋषिगण अल्पगुणान्वित हैं और देवता सर्वगुणान्वित। ऋषिगण देवताओंके गुण अपने अन्दर धारण करना चाहते हैं और देवसदृश बनना चाहते हैं। इस प्रकार देवोंका स्थान मुख्य है।

ये देवता संस्थामें अनेक हैं, पर उनके मन्त्र चारों वेदोंमें बिखरे पडे हैं। अग्निके कुछ मन्त्र ऋग्वेदके १ मण्डलके १ सूक्तमें आए हैं, तो कुछ मन्त्र उसके २४ वें सूक्तमें आए हैं। इसी प्रकार इन्द्रादि देवोंके मन्त्रोंकी भी अवस्था है।

इस संहितामें देवताओंके अनुसार चारों वेदोंका मन्त्रसंग्रह है। इन्द्रके चारों वेदोंमें जितने मन्त्र आए हैं, उन सबका एक जगह संग्रह कर दिया है। इसी प्रकार अन्य देवोंका भी किया है। इससे वेदका अध्ययन करनेवालोंको बडी सुविधा होगी। उन्हें चारों वेदोंको खरीदनेको कोई आवश्यकता नहीं। १७ पृष्ठोंमें उत्कृष्ट भूमिका युक्त आकर्षक छपाई, आकर्षक जिल्द। डबलक्राऊन ८ पेजी साइज, भूमिका १७ पृष्ठ, १०४८ पृष्ठ मूल्य ३०) (डा. व्य. पृथक्)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो. 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी, [जि. बलसाड]

यदि आप जानना चाहते हैं कि—

(१) प्राचीन भारतकी राज्यव्यवस्था कैसी थी?

(२) उस समयकी समाजव्यवस्था कैसी थी?

(३) उस समयकी अर्थव्यवस्था कैसी थी?

तो अवश्य पढिये—

यदि आप राजनीतिज्ञ हैं, तो "राज्यव्यवस्था" का अध्ययन आपको अवश्य करना चाहिए।

यदि आप समाजसुधारक हैं तो "समाजव्यवस्था" आपको अवश्य देखनी चाहिए।

यदि आप अर्थशास्त्री हैं तो "अर्थव्यवस्था" पर अपनी नजर अवश्य रखनी पडेगी।

और यदि आप अधिकारी हैं तो "प्रजाव्यवस्था" पर आपको ध्यान रखना पडेगा।

पर ये समस्यायें अब आपके लिए समस्यायें ही नहीं रह गई हैं। क्योंकि इन सबका समाधान आपको—

चाणक्य सूत्राणि

में मिल सकता है। सुप्रसिद्ध टीकाकार श्री रामावतारजी विद्याभास्कर की सुबोध एवं सरल हिन्दी टीकासे ६९० पृष्ठसंख्यावाले इस महान् और अमूल्य ग्रंथकी कीमत सिर्फ १२) (डा. व्य. पृथक्) है। शीघ्रता कीजिए। आज ही मंगवाए।

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)', पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Regd. No. G. 71

'संसारके पुस्तकालयमें ऋग्वेद प्राचीनतम ग्रंथ है'। संसारका ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो ऋग्वेदमें न हो। दार्शनिक, भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांसारिक आदि सभी विषयोंका समावेश ऋग्वेदमें है। अतः—

यदि आप जानना चाहते हैं

कि

(१) ऋग्वैदिक दार्शनिकता क्या है ?
(२) ऋग्वैदिक समाजशास्त्र क्या है ?
(३) ऋग्वैदिक भौतिकशास्त्र कैसा है ?
(४) ऋग्वैदिक अध्यात्मविद्या क्या है ?
(५) ऋग्वेदका सारांश क्या है ?

तो अवश्य ग्राहक बनिये—

म. म. पं. श्री. दा. सातवलेकर कृत

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(चार भागोंमें)

प्रकाशन कार्य आरंभ हो गया है। मंत्र, अर्थ, भावार्थ तथा हर मण्डलके अन्तमें उस मंडल का सारांश एवं कठिनस्थलोंका स्पष्टीकरण सभी कुछ पठनीय होगा। साइज- डबल क्राऊन ८ पेजी, सुन्दर कागज, पृष्ठ संख्या २५०० से ज्यादा, मूल्य मात्र २०) रु. प्रत्येक भाग, पर—

(१) जो पेशगी धन भेज कर इस ग्रंथके ग्राहक होंगे, उन्हें केवल ३०) में चारों भाग मिल सकेंगे।

(२) जो ग्राहक चारों भाग एक साथ खरीदेंगे, उन्हें इस ग्रंथके कुल मूल्य ८०) रु. पर २०% कमीशन दिया जाएगा।

(३) जो इस ग्रंथके कम से कम ७ ग्राहक बनायेंगे उन्हें लेखकके हस्ताक्षरके साथ चारों भाग मुफ्त भेंटस्वरूप दिए जाएंगे।

विशेष विवरणके लिए लिखें—

व्यवस्थापक—
स्वाध्याय-मण्डल पारडी,
पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी),' पारडी [जि. बलसाड]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पो. 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu